(ज्ञानपीठ पुरस्कार द्वारा सम्मानित साहित्यकार)

द्वीप का प्रेम

ताराशंकर वंद्योपाध्याय

(ज्ञानपीठ पुरस्कार द्वारा सम्मानित साहित्यकार)

द्वीप का प्रेम

ताराशंकर वंद्योपाध्याय

अनुवादक	:	अमर गोस्वामी
प्रकाशक	:	**गीतांजलि प्रकाशन**
		418, महाराम मोहल्ला, विश्वास नगर
		शाहदरा, दिल्ली-110032
संस्करण	:	2001
मूल्य	:	150.00
आवरण	:	मोना ग्राफिक्स, दिल्ली-110032
मुद्रक	:	कम्पीटेंट प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

भूमिका

साहित्य में लेखकों के दो प्रकार के वर्ग होते हैं। पहले वर्ग में ऐसे लेखक होते हैं जो आते ही सफलता के सर्वोच्च शिखर पर बैठ जाते हैं। बांग्ला साहित्य में विभूतिभूषण वंद्योपाध्याय ऐसे उदारहण हैं। उनका पहला उपन्यास 'पथेर पांचाली' ही उनके जीवन का श्रेष्ठ उपन्यास साबित हुआ। बाद में उन्होंने ढेरों उच्चकोटि की कहानियां, उपन्यास आदि लिखे लेकिन शायद अपनी बाद की लिखी हुई किसी भी कृति को अपनी सर्वप्रथम कृति से ज्यादा महत्वपूर्ण नही बना पाये।

दूसरे वर्ग के लेखकों की शुरुआती रचनाए सामान्य ही होती हैं। उनकी प्रतिभा को लोगों की नजरों में आने के लिए दीर्घकालीन कठोर साधना की जरूरत पड़ती है। ताराशकर इसी वर्ग के लेखक थे। उनकी पहले दौर की लिखी काफी रचनाएं औसत दर्जे की हैं। लबे समय तक काफी कुछ देखने-परखने के बाद, व्यर्थता की काफी ग्लानि और निराशा पार करके उन्होंने अपने लेखन की धाक जमायी थी। अपराजित आत्मविश्वास और ईश्वर-भक्ति ने उन्हें सफलता के शिखर पर पहुंचाया।

अपनी अभिव्यक्ति के उचित माध्यम की तलाश में भी उन्हें कम भटकना नहीं पडा। उन्होंने पहले कविताएं लिखीं, फिर नाटक और सबसे अंत में कथा-साहित्य लिखा। कहानिया और उपन्यास ही ताराशंकर को अपनी बात कहने के उपयुक्त माध्यम नजर आये।

ताराशंकर का साहित्यिक जीवन आठ वर्ष की उम्र में कविताओं से प्रारंभ हुआ। तदुपरांत उन्होंने नाट्य-लेखन में रुचि दिखायी। उनकी नियमित साहित्य-साधना 28 वर्ष की उम्र में लामपुर से प्रकाशित 'पूर्णिमा' मासिक पत्रिका से शुरू हुई। कविता, कहानी, आलोचना, सम्पादकीय के रूप में इस पत्रिका की ज्यादातर सामग्री उन्हीं की लिखी हुई होती थी। पूर्णिमा में ही ताराशंकर की पहली उल्लेखनीय कहानी 'प्रवाह का तिनका' प्रकाशित हुई थी।

कुछ दिन बाद ही ताराशंकर ने 'रसकली' नामक कहानी लिखी और 'प्रवासी' पत्रिका को प्रकाशनार्थ भेज दी। कई महीनों तक बार-बार पत्र लिखने पर भी कोई लाभ नही हुआ। आखिरकार ताराशंकर खुद 'प्रवासी' ऑफिस में उपस्थित हुए। जैसा अमूमन होता है, नये लेखक की रचना बिना पढ़े ही सम्पादकीय विभाग ने वापस लौटा दी। उस अस्वीकृत रचना को लेकर ताराशंकर पैदल ही मध्य कलकत्ता से दक्षिण कलकत्ता अपने रिश्तेदार के यहां पहुंचे। उस दिन उनकी आंखें कई बार भर आई थीं। एक बार उन्होने सोचा कि साहित्य साधना की इच्छा को तिलांजलि देकर गंगा नहाकर घर लौट जायें एव शात गृहस्थ की तरह अपना जीवन खेती-खलिहानी करते हुए गुजार दें।

साहित्य क्षेत्र में अपने पराजय की बात सोचकर उनका चित्त व्यथित होने लगता था। सौभाग्य से एक दिन डाकघर में उन्हें एक पत्रिका नजर आ गई। उस पत्रिका का नाम था 'कल्लोल'। ताराशंकर ने कल्लोल का पता नोट कर लिया और उसी पते पर उन्होंने

रसकली' कहानी भेज दी जल्दी ही उन्हें कहानी के स्वीकृत होने की सूचना मिली उत्साहित करने वाले पवित्र गंगोपाध्याय ने लिखा आप इतने दिनों तक मौन क्यों बैठे हुए थे - महानगरी के साहित्य क्षेत्र में ताराशंकर की वह पहली स्वीकृति थी।

विचारों का साम्य न होने पर भी नये लेखकों के लिए 'कल्लोल' का द्वार हमेशा खुला रहता था। आगे के दो वर्षों तक 'कल्लोल' में ताराशंकर की कई कहानियां प्रकाशित हुई। फिर 'कालि-कलम', 'उपासना' और 'उत्तरा' पत्रिकाओं में भी उन्होंने लिखा। 'श्मशान के पथ पर' नामक कहानी 'उपासना' पत्रिका में छपी थी।

ताराशंकर ने लिखा है कि उनके साहित्य-जीवन का पहला अध्याय अवहेलना और अवज्ञा का काल था। उनकी पुत्री का देहांत आठ वर्ष की उम्र में ही हो गया। कन्या वियोग से शोकाकुल कथाशिल्पी ने इस बार 'संध्यामणि' कहानी लिखी। सजनीकांत द्वारा संपादित 'बंगश्री' पत्रिका के पहले अंक में यह कहानी 'श्मशान घाट' नाम से छपी थी। 'संध्यामणि' के पहले ताराशंकर अठारह-उन्नीस कहानियां लिख चुके थे, जिनमें 'रसकली', 'राईकमल' और 'मालाचंदन' जैसी कहानियां भी थीं। लेकिन 'संध्यामणि' ऐसी पहली कहानी थी जिसे बांग्ला साहित्य में सिर्फ ताराशंकर ही लिख सकते थे।

'संध्यामणि' छपने के बाद अंतरंग साहित्यकारों के बीच इसकी व्यापक चर्चा हुई। इसके बाद 'भारतवर्ष' में छपी 'डाईनीर बांशी' (डाईन की बांसुरी) और 'बंगश्री' में प्रकाशित दूसरी कहानी 'मेला' ने ताराशंकर को कथाकारों की पहली पंक्ति में ला बिठाया।

ताराशंकर ने अपनी साहित्य जीवन की बातों में जिस अपमान की घटना का जिक्र किया है। वह 'देश' पत्रिका के दफ्तर में घटा था। यह सन् 1934 की बात है। उसके पहले 'देश' के शारदीय विशेषांक में उनकी बहुचर्चित कहानी 'नारी और नागिनी' छप चुकी थी। 'देश' के प्रभात गांगुली ने 'नारी और नागिनी' की बेहद प्रशंसा की थी। गांगुली महाशय बड़े मूडी आदमी थे। मिजाज ठीक रहता तो बेहद दिलदरिया थे और अगर मिजाज बिगड़ता तो चीखते-चिल्लाते हुए इस तरह इन्कार करते थे कि लेखक को बहुत अपमानजनक लगता। ताराशंकर की 'मुसाफिरखाना' जैसी कहानी उन्हें पसंद नहीं आयी। वे उसे लौटाते हुए बोले, 'यह (अर्थात् 'देश' पत्रिका) कोई डस्टबिन नहीं है।'

ताराशंकर की स्थिति धीरे-धीरे ऐसी बन गयी थी कि कोई उन्हें खारिज नहीं कर सकता था। यदा-कदा आलोचना करते हुए कोई कहता, 'कहानियां अच्छी लिखते हैं, शैली भी अच्छी होती है। लेकिन कहानियां, बड़ी स्थूल होती हैं। उनमें सूक्ष्मता का अभाव है।' जिज्ञासु ताराशंकर ने इस पर कविगुरु रवीन्द्रनाथ की राय जाननी चाही। उत्तर में रवीन्द्रनाथ ने लिखा, 'तुम्हारी रचनाओं को स्थूल दृष्टि कहकर जिसने बदनाम किया, मैं नहीं जानता, लेकिन मुझे लगता है कि तुम्हारी रचनाओं में बड़ा सूक्ष्म स्पर्श होता है और तुम्हारी कलम से वास्तविकता सच बनकर नजर आती है, जिसमें यथार्थ को कोई नुकसान नहीं पहुंचता। कहानी लिखते वक्त कहानी न लिखने को ही जो लोग बहादुरी समझते हैं तुम ऐसे लोगों के दल में शामिल नहीं हो, यह देखकर मैं बहुत खुश हूं। रचना में यथार्थ की रक्षा करना ही सबसे कठिन होता है।'

यथार्थ लेखन के इस दुरूह मार्ग पर ताराशंकर की जययात्रा बिना किसी रोक-टोक के निरंतर आगे बढ़ती ही गयी।

तारांशकर के के केन्द्रीय कृतभूमि म देहात का ब्राह्मण समाज था लेकिन उनके जीवन बोध ने धीरे धीरे फैलते हुए को अपन दायरे में ले लिया रवीन्द्रनाथ ने सबसे पहले अपनी कहानियों में गांव-देहात के क्षुद्र मनुष्य को स्थान दिया था। लघु प्राण, मामूली कथा, छोटी-छोटी दुख की बातें, जो बेहद सहज और सरल हैं। जिनका जीवन है, उन्हीं को लेकर कविगुरु ने अपनी छोटी कहानियों की मंजूषा सजाकर बांग्ला साहित्य में कहानियों की प्राण-प्रतिष्ठा की। शरत् साहित्य में मुख्यतः देहातों के मध्यवित्त समाज को ही प्राथमिकता दी गयी है। तारांशकर ने समाज के दीन-हीन अछूत स्तर के लोगों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। उन्होंने समाज के सभी वर्गों के लोगों को अपनाकर अपने रचनालोक को पूर्णता प्रदान की। इस दृष्टि से तारांशकर सम्पूर्ण समाज के जीवन-बोध के सर्वप्रथम कलाकार हैं। उनकी कहानियों में अपने समय का परिवेश उजागर हुआ है। माटी से बने मानव जीवन को ही उन्होंने आविष्कृत किया। इसी दृष्टि से उनके साहित्य को आंचलिक कहा जाता है। अंचल विशेष की प्रकृति और उसी के प्रभाव से नियंत्रित मनुष्य के सुख-दुख की यथार्थता को कहानियों को चित्रित करने से जाहिर है उनमें आंचलिक विशेषताएं नजर आयेंगी ही। इस दृष्टि से यथार्थ जीवन पर जो भी लिखा जाए वही आंचलिक हो जाता है। लेकिन अपने समय और परिवेश की विशेषताओं को ग्रहण करके जो साहित्य चिरंतन मानव-सत्य को उजागर करता है उस साहित्य को आंचलिक कहकर उसे संकीर्ण बनाना उचित नहीं होगा। तारांशकर के साहित्य का व्यक्ति अपनी आदिम प्रवृत्ति, युगों से संचित संस्कार और वंशानुगत आजीविका ढोने वाला परिचित इन्सान है। इसीलिए तारांशकर बंगला के सार्वभौमिक जीवन-शिल्पी हैं।

तारांशकर की कहानियों की मुख्य विशेषता है समाज के अज्ञात कुलशील क्षुद्र समझे जाने वाले लोगों के प्रति उनकी गहरी संवेदना और अंतरंगता। भारतीय मानव समाज के आदि स्तर के जो निर्माता थे, परवर्ती काल के आर्य सभ्यता के प्रसार और प्रतिष्ठा के फलस्वरूप वे लोग समाज की सीमारेखा के बाहर अवज्ञात और अवहेलित होकर पड़ रहे, शिक्षित और सभ्यताभिमानी तथा अपने को ऊंचा समझने वाले लोगों ने जिनकी ओर मुंह उठाकर नहीं देखा, तारांशकर उन्हीं पतितों-अवहेलितों के कथाकार थे।

वंश परंपरा और अपनी देश काल की परिस्थितियों की दृष्टि से भी तारांशकर सार्वभौम मानव मुक्ति के महान शिल्पी हैं। मनुष्य की जैविकता उसे पशु स्तर तक ले जाती है। युग-युग से संचित अंध-संस्कार एवं असंयत प्रवृत्ति के वशीभूत होकर वह अमानुष बन जाता है। तारांशकर ने रचनाकार की सर्वोपरि दृष्टि और लेखक की संवेदनशील सहभागिता के जरिये लोगों के प्रतिदिन के स्खलन-पतन तथा उनके दोषों को महसूस किया था। मानवतावाद के ज्योतिर्मय प्रकाश में मनुष्य की अमानुषिकता का असली चेहरा दिखाना ही उनके रचनाकार का दायित्व रहा है। —अनुवादक

अनुक्रम

शंकरीतला के जंगल में

सदर शहर के श्मशान घाट पर चार डोमों ने उस लाश को लाकर उतारा। उस आदमी को आज सुबह ही फांसी हुई थी। फांसी के अभियुक्त के मृतदेह को अमूमन शव नहीं; लाश कहा जाता है। उस आदमी की अंतिम क्रिया के लिए कोई उसका शव लेने आया भी नहीं था। इसीलिए श्मशान के डोमों को जेल अधिकारी ने बुलाकर अंतिम क्रिया के लिए उन्हें लाश सौंप दी थी। निगरानी के लिए उनके साथ एक सरकारी आदमी आया था।

लाश को नीचे रखकर डोम गांजा पीने बैठे। सरकारी आदमी लकड़ी का इतजाम करने चला गया। लकड़ियां ढोने के लिए उसके साथ एक आदमी भी गया।

गंगा के किनारे श्मशान था। बरसात के समय श्मशान घाट से सटकर नदी की धारा बहती थी। बाकी समय पानी नीचे उतर जाता था। श्मशान के नीचे ही रेती पर से वह नहीं बहती थी। यह बरसात का समय नहीं था। लाश को रेती के घाट पर उतारकर रख दिया गया था। गंगा के किनारे घने पेड़ों से निकलकर एक औरत धीरे-धीरे नीचे उतरी। वह लाश के पास आकर खड़ी हो गयी। लाश पर कपडा पड़ा था। डोम थोड़ी दूर पर बैठे आपस में बातें कर रहे थे। एक गांजा तैयार कर चिलम में भर रहा था।

'जरा सुनो।' उस औरत ने उन डोमों को बुलाया।

'कौन है ?' उन लोगों ने चकित होकर औरत की ओर देखा।

'एक बार इसके चेहरे से कपड़ा हटा दो।'

'लाश का ?'

'हां ! एक बार देखूंगी।'

'देखोगी ?'

'हां, देखूंगी ! एक बार दिखा दो।'

'तुम हो कौन ?'

'एक औरत हूं।'

हू तब तो उन सभी ने गौर से उसके चेहरे को देखा

उस औरत ने ध्यान नहीं दिया वह कपडे से ढके या लपेटे गये उस फासी दिये गये व्यक्ति की लाश को देख रही थी कपडे का आवरण भेदकर जैसे उसकी आखें उस मृत व्यक्ति के चेहरे को देखना चाहती थी।

जो व्यक्ति चिलम में गांजा भरकर दबा रहा था उसकी उंगली ने हरकत बद कर दी थी। जो लोग बातें कर रहे थे, वे सभी उस औरत को देखकर खामोश हो गये। वे सभी बड़े आश्चर्य से उसे देख रहे थे।

वह एक जवान औरत थी। वह सुंदर थी, बल्कि कुछ ज्यादा ही उसके नाक-नक्श तीखे थे। उसे देखकर पुरुषों का मन चंचल हो जाता। वह मध्यम कद की थी। उसके नाक, आंख, होंठ सभी तीखे थे। माथा भी छोटा था। माथे पर बालो की लटें पड़ी रहती थीं। मगर इस वक्त उसके बाल रूखे थे, जूड़ा खुलकर पीठ पर साडी के नीचे लटक रहा था। बालों के सिरे आंचल से बाहर निकले हुए थे। माथे पर और चेहरे के दोनों तरफ उसके बालों की लटें गंगा की हवा में हिल रही थी।

उसके बदन पर छींट का ब्लाउज और पहनावे में एक काले पाड़ की मिल की साडी थी। वह नंगे पैर थी। देखने से वह न तो किसी संपन्न घर की लग रही थी न किसी ऊंचे कुल की थी। लेकिन उसका चेहरा देखकर अगर कोई उसे अच्छे खानदान या ऊंची जात की कहे तो कोई उस पर अविश्वास नहीं कर सकता।

उन डामों में से किसी ने आंखों के इशारे से अपने साथियों से फुसफुसाकर कहा, 'वही लगती है।'

'हां, लगती तो वही है।'

'मगर यहां पर क्यों आयी है ?'

वह औरत की नजर उस लाश पर ही थी। तभी से वह एक ही मुद्रा में खड़ी भी थी। डोमों के फुसफुसाकर कहने के बावजूद बातें उसके कानों तक पहुंच गयी थी। शायद इसीलिए उसने कहा, 'मैं इसकी पत्नी हूं। चार महीने पहले इसके साथ मेरा सांगा हुआ था।'

'मगर इसके खिलाफ तुम्हीं ने तो गवाही दी थी न !'

'हां !'

अदालत में फैसले के वक्त डोमों ने उसे नहीं देखा था। ऐसा होता तो वे यह सवाल न करते। लेकिन उसे याद है कि उस दिन वह दिन-भर गवाही के कठघरे में खड़ी रही थी। अभियुक्त के कठघरे में वह आदमी खड़ा था। वहीं आदमी जो इस वक्त मुह ढके पड़ा था जिसे आज भोर में फांसी दे दी गयी थी। उसका रंग काला था, नाक तीखे थे और आंखें बड़ी-बड़ी थीं। सुंदर नुकीली मूंछें थीं। लम्बे कद और काफी चोड़े

सीने वाले उस व्यक्ति का नाम घना   था

गीता की आंखों से जैसे शोले निकल रहे थे। वह खुद भी समझ रही थी कि उसकी दोनों आंखों में जैसे किसी ने भट्ठी की आग सुलगा दी थी।

घनश्याम से वह बहुत डरती थी। बिना डरे उपाय नहीं था।

बाप रे ! वह कितना भयानक लगता था। कितना निष्ठुर ! बाप रे !

वह ताकतवर भी खूब था। ओफ, कितने तेज झटके से खींचता था। धरती का सीना चीरकर एक पौधे—चार साल के एक पौधे को उसने निष्ठुरता से उखाड लिया था। चर्र से धरती का सीना फटने की तरह उसका सीना भी फट गया था। उसका मुंह खुला का खुला रह गया था। याद आने पर वह अब भी कांप जाती है। मुह में अपने आप ही निकल पड़ता है, अरे बाप रे।

इस वक्त भी सुबह के प्रकाश में इतने आदमियों के होते हुए रेती पर पड़े इस फासी लगे लाश के सामने खड़ी होकर वह डर से कांप उठी। उसकी आंखों में आसू आ गये। आंखें आंसुओं से भर गयीं।

कठघरे में खड़ी होकर उस दिन उसकी आंखें जल रही थीं। उसे महसूस हुआ था कि उसकी दोनों आंखें जलती हुई भट्ठियां हैं। उसमें से लपटें निकल रही थीं।

उससे किसी ने कहा, था, कहो, भगवान् के नाम से मैं शपथ लेता हूं कि इस अदालत में सच के अलावा कुछ नहीं कहूंगी।

घनश्याम उसे ही देख रहा था। उसकी आंखों से आंखें मिलने पर वह नजरे हटा लेता।

इसके बाद वकील ने उस पर सवालों की बौछार शुरू कर दी। दो वकील थे। एक की जिरह खत्म होने के बाद दूसरे ने पूछना शुरू किया।

एक ने, वह सरकारी वकील था, उसने पूछा, तुमने अपना नाम गीतादासी बताया। इस आसानी को तुम पहचानती हो ? उसकी आंखों से आग बरसने लगी, वह उसके सीने में भी धधक रही थी। उसने कहा, यह राक्षस है, राक्षस !

'नहीं, नहीं। राक्षस या पिशाच, मैं यह नहीं पूछ रहा हूं। तुम उसे पहचानती हो ? हां या ना में कहो।'

'पहचानती हूं।'

क्या नाम है इसका ?'

'कई महीने पहले इसके साथ मेरा सांगा हुआ था। यह मेरा मर्द है। उसका नाम—'

'ठीक है, ठीक है, उसका नाम घनश्यामदास है ?'

'हां, घनश्यामदास। वह मेरा सांगा किया हुआ मरद है।'

'तुम उससे प्यार करती थी ?'

इस बात का उससे जवाब देते नहीं बना उसे लगा कि उसे रुलाई आ जायेगी आ भी गयी थी दो-एक बार सवालों का जवाब देने की कोशिश करते करते वह उस कठघरे की रेलिंग पर सिर रखकर फूट फूटकर रोने लगी उससे अपने को सभाला नहीं गया।

हाय ! प्यार ! उस प्यार की बात भला जबान से कही जा सकती है ! ओफ! जब रात में पूरी दुनिया सो जाती थी—पिता और मां सो जाते थे, दूसरे कमरे में भाई और भाभी सो जाते थे, पड़ोसी सो जाते थे, गाय-बैल, चिड़िया तक सो जाती थीं, मगर वह नहीं सो पाती थी। और सोते नहीं थे गांव के कुत्ते जो रात-भर भौंकते रहते थे।

और बीच-बीच में उल्लू के बोलने की आवाज आती। रात के हर पहर में गीदड़ बोलते। किसी भी तरह का शब्द होते ही उसके कान खड़े हो जाते। इसके बाद सीटी बजने की आवाज आती। वह उठ बैठती।

इसके बावजूद उस दूसरे वकील ने कहा था, 'सब झूठ है। तुम झूठ कह रही हो। इस आदमी पर तुम्हें गुस्सा था, आक्रोश था।'

वह अवाक् हो गयी थी। वह मुंह बाये उसकी ओर देखती रही थी।

'मेरा कहना है कि तुम उसे प्यार नहीं करती थी। उस पर तुम बेहद खफा थी, नाराज थी।'

अब चैतन्य होकर वह बोली, 'नहीं। मैं इससे प्यार करती थी। इस पर मेरा कोई आक्रोश नहीं था।'

'बिल्कुल था।'

'बिल्कुल नहीं।'

'तुम्हारे पहले पति की मौत के बाद तुम्हारी आदतें और चरित्र बिगड़ गया था, या नहीं ?'

गीता चौंक पड़ी थी पर उसने अपने को संभाल लिया।

'हां या ना में जवाब दो। तुम्हारे बारे में—'

'हूजुर !'

जज ने वकील से कहा था, 'इस बात को लेकर उसे क्यों परेशान कर रहे हे? उसने तो पहले ही पुलिस के सामने कबूलकर लिया है, पुलिस ने भी यही लिखा है। गीता के माता-पिता सभी ने यह बात कबूल की है। बाप ने कहा है—मेरी बेटी गीता बचपन से ही सुंदर थी। उसे सजना-संवरना पसंद था। बड़ी शांत लड़की है हुजूर, मगर बड़ी जिद्दी और बहुत सख्त है।'

पशुपतिदास की लड़की थी गीतादासी। मध्यम कद की, लेकिन सुंदर। सिर्फ सुदर ही नहीं, सजने-संवरने में पटु और प्रेमपूर्ण स्वभाव की भी।

वह बहुत कम बोलती है कुछ कहती है तो बड़ी धीमी आवाज में बिना पलक झपकाये सूनी नजरों से देखने का उसका यह स्वभाव बचपन से था। डाटने पर भी वह वैसी ही नजरों से देखती रहती थी, बस उसकी भौंहें सिकुड़ जाती, उसे मारने पर भी ऐसी ही प्रतिक्रिया होती। मगर तब वह आंसू बहाने लगती। उसके माथे पर बल भी पड़ जाते। इसी भंगिमा में वह अपना दायां या बायां हाथ अपनी चोट वाली जगह पर रख देती। लेकिन खुशी की बात होती तो भी ऐसा ही होता, बस उसकी आंखों का भाव बदल जाता। गाल भी कुछ फैल जाते थे। होंठों के कोरों पर मुस्कान नजर आने लगती थी।

वह देखने से शायद बेवकूफ शांत लगती हो लेकिन थी बेहद सहनशील, या फिर अबला होने के कारण ऐसा लगता हो।

चौदह-पंद्रह साल की होते ही मां की जल्दबाजी के कारण पिता ने उसकी शादी कर दी थी। नहीं तो वे कुछ बाद में करते। उससे उन्हें कुछ लाभ होता। लेकिन गीता की मां कहती थी—लड़की की जल्दी शादी कर दो। देर करना ठीक नहीं।'

'क्यों ?'

'वह बाहर से भले ही शांत-ठंडी हो, लेकिन उसके सीने में बेहद आग है। उसका सजना-संवरना नहीं देखते ? उसकी शादी कर दो।'

लड़का ढूंढ़ने में परेशानी नहीं हुई। एक अच्छा लड़का मिल भी गया। कुछ कोस की दूरी पर एक खाते-पीते परिवार में उसकी शादी हो गयी। उसका दूल्हा तीन भाइयों में सबसे छोटा था। एक हली खेती थी, दो भाई खेती किसानी का काम करते थे। सबसे छोटा होने के कारण घर का दुलारा था और शौकीन मिजाज भी था। देखने मे भी भद्र-सभ्य लगता था। उसकी आंखें बड़ी-बड़ी आंखें थीं, बांसुरी की तरह नाक थी—लम्बे-लम्बे बाल थे। वह बांसुरी बढ़िया बजाता। लुंगी के ऊपर एक कालर वाली गजी पहनकर गांव में ही अपनी दुकान पर बैठता था। बीड़ी, दियासलाई, आधा मन नून, ढाई सेर तेल, पांच पाव मिर्च, एक आधा सेर धनिया, हल्दी और मिल जाता तो दुकान पर मिट्टी का तेल भी बेचने के लिए रखता। गांव के लोग ही खरीददार थे। छोटा-सा गांव था। पूरे गांव में उसी के जात वाले रहते थे। वह एक और काम करता, तम्बाकू और बीड़ी पत्ता खरीदकर बीड़ी बनाता था। फिर उन्हें शहर के महाजन को दे आता था। उससे भी कुछ कमाई हो जाती थी। उसका नाम भी बंशी। वंशीवदनदास।

लेकिन गीता विचित्र लड़की थी। वह अपनी शादी से खुश हुई कि नहीं, समझ में नहीं आया। वह बेवकूफों की तरह देखती हुई कहती पता नहीं। डेढ़ साल बाद गीता को एक लड़की भी हुई। लड़की देखने में सुंदर थी—गोरी, गोल-मटोल। आखें अपने बाप की तरह बड़ी-बड़ी। मगर स्वभाव उसका मां की तरह शांत था। वह जरा

भी रोती नहीं थी लेकिन गीता का दुर्भाग्य दुर्भाग्य के अलावा और कहा भी क्या जाए शादी के तीन साल बाद जब उसकी बेटी डेढ साल की थी वशीवदन की मौत हो गयी

बच्ची को गोद में लेकर गीता अपने मायके लौट आयी। हमेशा के लिए। और वह आना भी कैसा रहा। इस शांत बेवकूफ लड़की की तरह ही चुपचाप। बिना कोई खबर दिये, बिना किसी को साथ लिये हाथ में एक गठरी लेकर अचानक वह शाम के वक्त अपने मायके आ गयी। घर में उस वक्त कोई मर्द नही था। बस मां और भाभी तथा भाभी का तीन साल का लड़का आंगन में खेल रहा था। वह ऐसे समय घर में घुसी। उसने किसी को पुकारा भी नहीं। बस, एक चैन की सांस लेकर आंगन में अपना पैर पटकाकर अपनी बेटी को गोद से उतारकर बोली, आह !

वह अभिव्यक्ति रास्ते की थकान को बाप के आराम और आशंका के बाद की निश्चिंतता के अलावा और कुछ नहीं थी। मंजिल पर पहुंचकर अपने कंधे का भार अपनी बेटी को उतारकर निश्चिंत होने की वह अभिव्यक्ति थी। इसी के साथ डर भी खत्म हो गया था। अब वे दुलू को उससे छीन नहीं सकते।

सबसे पहले भाभी की नजर उस पर पड़ी। उसके हाथ में साझ का दीया था। उसने कहा, 'अरे, ननदिनी, तुम अचानक बिना खबर के ही कैसे चली आयी ?'

उधर से मां ने पूछा, 'कौन है ?'

'ननदिनी।'

'गीता ?'

'हां।'

मां भागती हुई आयी। आकर उसने बेटी से चकित होकर पूछा, 'ओ मां ! तू ? बात क्या है ?'

'मैं वहां से चली आयी।'

'वह तो देख रही हूं। मगर इस तरह आयी क्यों ? अचानक ?'

'बस चली आयी। वहां अब रह नहीं सकती।'

'क्यों ?'

'क्यों क्या ? नहीं रह सकती।' कहते-कहते ही वह बेटी के पीछे भागते हुए बोली, 'अरे ओ ! ओ दुलू !'

उसकी डेढ़ साल की दुलू बड़ी भाभी के छोटे बेटे के सामने खड़ी थी। दोनों एक-दूसरे से बातचीत नहीं कर रहे थे, बस एक-दूसरे को घूर रहे थे। खेल में इसी बीच बाधा भी पहुंच चुकी थी। दुलू ने अपने ममेरे भाई को धक्का दिया। उसने अपने को संभाल लिया उसके बाद ही वह गुस्से से घूरने लगा उसके कुछ करने के पहले

ही गीता ने अपनी लडकी को पुकारकर उसे सतर्क कर दिया वह भोगती हुई आयी और अपनी बेटी को झट से गोद में उठा लिया।

लड़की को गोद में उठाकर उसकी पीठ पर घूंसा मारते हुए वह बोली, 'आफत है। अपने बाप को खा चुकी है इस बार मुझे भीख ले। इस आफत की पुड़िया के मारे कहीं भी मुझे शांति नहीं है।'

बेटी दुलू भोकार छोड़कर रोने लगी।

गीता की मां ने हाथ बढ़कर अपनी नातिन से कहा, 'दुलू मानिक मेरी गोद मे आ।'

दुलू मानिक अपनी नानी की गोद में जाती कि नहीं कहना मुश्किल है लेकिन गीता ने झटके से अपनी लड़की को दूर हटाते हुए कहा, 'नहीं।'

मां थोड़ी चकित हुई। इसके बाद बोली, 'तू पागल हो गयी है ? मैंने ऐसा क्या गलत कह दिया ?'

गीता उसी गूंगे और अबोध प्राणी की तरह मां की तरफ देखती रही। कोई जवाब नहीं दिये। बाद में उसने अपनी भाभी से सब कुछ कह दिया।

'वे लोग दुलू को जान से मार देते। समझी ?'

'मार देते ?'

'हां ! मार देते।'

'कौन मारता ?'

'उसके ताऊ, ताई, सास! सभी। उस पर सभी का आक्रोश था।'

'ननद यह क्या कह रही हो ?'

'जरा भी झूठ नहीं कह रही हूं। कसम खा सकती हूं। काली के थान पर हाथ रखकर कह सकती हूं।'

'लेकिन यह जैसी तुम्हारी बेटी है वैसी ही वह उनके बेटे की भी तो लड़की है—भाई की लड़की है।'

'इससे क्या ? यह मेरे पेट से हुई है। इसके अलावा इसके कारण ही घर में बंटवरा होता। दुकान उसकी थी, उसका रुपया उन्हें देना पड़ता। सास ने मुझसे खुद कहा—हमारी लड़की को हमें देकर तू हरामजादी यहां से निकल जा। तू अभी जवान है, हाथ-पैर से मजबूत है, हम लोगों में सांगा का रिवाज है—तू किसी से सांगा कर ले। यहां रहकर तुझे बदचलनी नहीं करने दूंगी।'

ननद के चेहरे को देखती हुई भाभी ने पूछा, 'बदचलनी का मतलब ? तूने कुछ किया था क्या ?'

'मैं क्या करती ? दूसरे लोग कर रहे थे। मेरे मर्द के रहते ही लोग मुझे घूर-घूरकर देखते थे, इशारेबाजी करते थे; मेरा मर्द मौजी और दुर्बल था। भलामानुष भी।

वह कहता जिसे जो करना हो करे गीता तो कुछ नहीं करती उसके यार दोस्त हो। ज्यादा बिगडे हुए थे शादी के बाद मुझे देखकर सब उसके दोस्त हो गये थे उसके मरने के बाद तो ये सब मसान की लाश की तरह मुझे सियार कुत्ते गिद्ध की तरह सोचने के लिए उतावले हो गये . मैं क्या करती ? मैंने कुछ नहीं किया भाभी कुछ नहीं। हां, मगर तुम समझ सकती हो। इस उम्र में शरीर में एक तपन तो होती ही है। मैं बैसाख की धरती की तरह तपने लगती हूं। उनकी ओर देखती थी। कभी देखकर हंस देती। उसे ही उन लोगों ने देख लिया था। तभी तो बहाने से वे मुझे घर से निकालने की बात करने लगे। मुझे वहां से विदा करना ही उनका मतलब था।'

भाभी ने कहा, 'ठीक है, अब तुम इस बार देख सुनकर सांगा कर लो। अभी तुम जवान हो, उम्र भी कम है, चेहरे पर लुनाई है, सुंदर हो--बस एक लड़की है तुम्हारी। मगर मरद काफी--'

'भाभी !' गीता भयभीत बिल्ली की तरह अपने बचाव में गुर्रा उठी।

भाभी ने चकित होकर पूछा, 'क्या हुआ ?'

गीता बोली, 'नहीं !'

'क्या नहीं ?'

'यह मुझसे नहीं होगा।'

'क्या, सांगा ?'

'हां।'

'मगर क्यों ?'

'नहीं। तुम मरद जात को नहीं जानती।'

'यह लो।' भाभी हंसने लगी, 'हाय गीता, तेरी कितनी उम्र हुई है, कितने मर्दों के साथ तूने घर-बार किया है ?'

'कुछ भी हो। मुझे इतने में ही अनुभव हो गया है। समझी ! एक आदमी से, मेरे पति के जिंदा रहते ही प्रेम हो गया था। तब ढुलू पैदा हुई ही थी। वह गोद की बच्ची थी। उसका नाम घनश्याम है। वह उनका कुछ लगता है। कहीं जाते वक्त रास्ते में रिश्तेदारी के कारण चला आया था। हमारे यहां आकर मुझे देखकर मेरे पास मंडराने लगा। वह देखने में जितना सुंदर था उतना ही रसिक भी। कितना लंबा था, इतनी चौड़ी छाती थी, कमर बेहद पतली, इतनी कि दो हाथों की मुट्ठियों में समा जाए। जैसी बड़ी-बड़ी आंखें थीं, वैसे ही चमकते हुए दांत थे। मुझे देखने के बाद जहां जाना था वहां चला गया, मगर लौटते वक्त तरह-तरह की चीजें लेकर फिर से हमारे यहां आ धमका।

घनश्याम सचमुच गीता को देखकर मुग्ध हुआ था। उसे वह वाकई पसंद करने

नगा था वह देखने में खूबसूरत था   था मेहनती भी बहुत था इसीलिए वह कमाता भी अच्छा था। थोड़े बहुत पैसे भी उसने बना लिये थे, लेकिन उसे कोई लड़की पसंद नहीं आती थी। उसकी दो शादियां हो चुकी थीं—उन्हें वह छोड़ भी चुका था। इस वक्त वह अकेला था। वह शहर अपने लिए लड़की देखने ही गया था। तभी अपने रिश्तेदार वंशीवदन की औरत पर उसकी नजर पड़ी। उसे वह पसंद आ गयी। शहर की लड़की उसे अच्छी लगते हुए भी मनलायक नहीं लगी थी। उनसे सोचकर देखने की मोहलत लेकर लौटते समय वह फिर वंशीवदन के यहां चला गया। वहां वंशीवदन के साथ रिश्ते के अलावा मिता-मितानी का अलग रिश्ता जोडकर वह घर लौटा था। वंशी के हाथ से पान लेकर घनश्याम ने कहा था—तुम्हारे साथ पान का संवंध किया भाई ! तुम मेरे पान हो और भाई मैं तुम्हारा 'सिगरेट' हू, यह लो—पियो। इसके वाद उसने जेब से एक डिबिया निकालकर कहा, भाई, इसमें जर्दा है। आधा तुम रख लो। अपनी औरत को दो। वह तो 'सिगरेट' नही बनेगी। वह 'जर्दा बनेगी।'

यह वात वंशी की मां को अच्छी नहीं लगी थी। उसे इसमें शुरू से ही खोट नजर आ रहा था। इस तरह से जबर्दस्ती। दोस्ती बढ़ाना, 'मितवा-मिताई' का संबध स्थापित करना। इन सबके पीछे उसकी नीयत साफ नजर नहीं आ रही थी—खाने की थाली में साग के नीचे छिपायी मछली की गंध की तरह। नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं। वंशी हंसने लगा। बोला, 'वह आज आया है, कल चला जायेगा। इसमें इतना परेशान होने की क्या बात है।

गीता को यह सब अच्छा लगा था या बुरा कहना मुश्किल है। उसने बस अपना घूंघट थोड़ा और खींच लिया था।

वह घूंघट उसने अभी तक कम नहीं किया था। लेकिन बीच-बीच में घूंघट की आड़ से वह देखती, घनश्याम उसी पर नजरें गड़ाये हुए है। वह भी उसकी ओर टकटकी लगाकर देखती। उसकी पलकें तक नहीं गिरती थीं। सिर्फ पलकें ही नही, बल्कि उसका सारा शरीर एकदम अचल हो जाता था। वह खड़ी हो जाती थी। या उसकी ओर देखकर चलते वक्त अचानक ठोकर लगने से चौंक पड़ती थी। 'आह' करके वह बैठकर अपनी अंगुली सहलाने लगती थी। उसका अंगूठा पत्थर या लकडी की चौखट या दूसरी किसी चीज से लगाकर कट जाता था।

इसी घनश्याम ने उससे सांगा की बात की थी। कुछ दिन पहले ही। उसने कहा था कि वह ढुलू को अपनी लड़की जैसा मानेगा। अपने बेटे-बेटियों से वह ज्यादा प्यार करेगा। वह मंदिर में भगवान् के सामने कसम खाकर कह सकता है कि एक पैसा कमाने पर वह उससे पहले ढुलू के लिए दूध खरीदेगा, दो पैसा कमायेगा तो एक पैसे में ढुलू के लिए दूध और दूसरे से गीता के भात का चावल खरीदेगा। तीसरा

पैसा मिलने पर तब वह अपने पर खर्च करेगा

डेढ साल पहले शहर म वह जिस लडकी को देखने लगा था उससे भी उसन शादी नहीं की थी, और भी कई जगह उसे कोई लड़की पसद नहीं आयी थी। विवाह या सांगा उसने पत्नी की मौत के बाद अभी तक नहीं किया था।

उसने कहा था, 'जर्दा खरीदकर मैं बैठा ही रहा, पान के अभाव में उसका इस्तेमाल नहीं हुआ।'

इसके जवाब में गीता उसी गूंगी और अबोध लड़की की तरह उसकी ओर देखती रही। बस देखती रही और सोचती रही। क्या कहे ? मगर उसका दिल धडकन लगा था, उसे अचानक डर लगने लगा।

इन्कार वक्त वह पसीने-पसीने हो उठी, उसके लिए सांस लेना मुश्किल हो गया।

'हां या नहीं, कुछ तो कह। पान ? मीठा बीड़ा ?'

गीता सिर पर दूध का लोटा और गोद में दुलू को लेकर रास्ते के किनारे खडी थी, जैसे उसके पैरों के नीचे से जड़ें निकालकर जमीन में घुस गयी थी जिससे वह भी वहीं स्थिर हो गयी थी। माथे पर पहले की तरह ही घूंघट निकाल थी।

'पान ! मेरा मीठा बीड़ा—' घनश्याम थोड़ा आगे बढ़ा। मगर तभी गीता की गोद में चढी डेढ़ साल की दुलू अपने नन्हें हाथों से उसे भय दिखाते हुए बोली, 'मारूंगी।'

घनश्याम हंसने लगा। बोला, 'मुझे मारोगी दुलू ? मगर क्यों मारोगी ?'

दुलू इसका कारण नहीं जानती थी। वह फिर बोली, 'मारूंगी। हूं।'

'मैं तुम्हें मिठाई दूंगा, खिलौने दूंगा, फ्रॉक दूंगा—कितनी चीजें दूंगा।'

इस बार दुलू चुप हो गयी। अब मारने की बात नहीं कह पायी।

'तुम्हें खूब प्यार करूंगा। यह लो एक रुपया। लो—लो तुम्हें गुड़िया खरीद दूगा।'

दुलू ने हाथ फैला दिया।

'आओ, मेरी गोद में आओ।' घनश्याम ने हाथ बढ़ाया।

दुलू ने भी घनश्याम की गोद में जाने के लिए हाथ बढ़ाया। मगर तभी गीता ने चौंककर आतंकित होते हुए अपने सारे अंग को झटका मारकर पीछे कर लिया। साथ ही दुलू को भी।

'नहीं।' इतनी देर बाद एक घुटी हुई आवाज उसके मुंह से निकली। अचानक झटके से सिर पर रखा लोटा जमीन पर गिर पड़ा।

घनश्याम घबरा गया। उसने पूछा, 'क्या हुआ ?'

गीता भी थोडी लज्जित हुई मुस्कराते हुए बोली 'कुछ नही बच्ची छोटी है घर मे जाकर सब कह देगी

'कहे न ! मैं तो सागा करने की वात कर रहा हू।'

'मेरा लोटा उठा दो।'

घनश्याम ने लोटा उठाकर उसे देते हुए कहा, 'मेरी बात का जवाब ?'

'तुम रात को आना।'

'रात में ?'

'हां ! मेरा कमरा तो जानते ही हो। दो कंकड़ फेंककर इशारा करना।'

'सांगा नहीं करोगी ?'

'रात मे बताऊंगी। मुझे सोचने दो।'

उसी रात को गड़बड़ हो गयी। घनश्याम को कोई पकड़ नहीं पाया। वह चीते की तरह छलांग लगाकर निकल गया था। बाहर निकलकर वह इतनी तेज दौड़ा कि कोई उसे छू भी नहीं पाया।

शायद उन्हें थोड़ी देर और इंतजार करना चाहिए था। घनश्याम के कमरे में आने तक इंतजार करना चाहिए था। लेकिन इंतजार भी कितना करती। इंतजार तो दोनों ने किया ही था, घंटे भर तो किया ही होगा।

घनश्याम सड़क पर खड़ा था।

ऊपरी मंजिल की खिड़की पर गीता खड़ी थी।

घनश्याम ने पुकारा, 'गीता !'

'हां !'

'क्या तय किया ? जवाव दो।'

'ऐं !'

'जो कहना है कहो।'

'अभी फैसला नहीं किया।'

'इसमें इतना सोचने की क्या बात है ?'

'क्या ?' गीता ने सवाल के जवाब में सवाल किया, 'क्या ?'

'मतलब ?'

'कुछ तय नहीं कर पा रही हूं।'

'दरवाजा खोल दो।'

'क्या ?'

'दरवाजा।'

'नहीं, बिटिया जाग जायेगी।'

'गीता।'

'नहीं ढुलू जाग जायेगी। वह करवट बदल रही है।'

'गीता !'

'तुम आज लौट जाओ !'

'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।'

'नहीं।'

'भागो, ढुलू जग गयी है।'

सचमुच ढुलू रोने लगी थी। गीता ने उसे गोद में उठाकर घनश्याम से कहा, 'इस वक्त तुम जाओ।'

इसी समय आवाज आयी, 'पकड़ साले को। कौन है रे ? कौन साला वहां खड़ा है ?'

हट्टा-कट्टा घनश्याम वाकई चीते की तरह छलांग लगाकर बड़ी फुर्ती से रात के अंधेरे में गायब हो गया। वे लोग उसे ढूंढ़ नहीं पाये।

इधर गीता के सुसराल के भी लोग जाग गये थे। गीता ने खुद उठकर किसी के लिए दरवाजा नहीं खोला था लेकिन गरीब के कच्चे घर के कोठे का कमजोर दरवाजा किसी गुस्सैल आदमी की लातों की चोट से भला टिक सकता था? उसके दोनों जेठों ने दरवाजे को लात मारकर खोल दिया। दरवाजे की सांकल उखड़ गयी थी। इसके बाद सास को आगे करके सभी ने गीता पर हमला बोल दिया।

गीता अबोध गूंगी लड़की की तरह उन्हें खामोश मगर एकटक उसी जगह खड़ी हुई देखती रही, जहां खड़ी होकर वह घनश्याम से बातें कर रही थी। बस इस बार उसने पलटकर अपना मुंह उनकी ओर कर लिया था। वह ढुलू को अपने सीने से सटाकर वहीं बैठ गयी। जवाब में उसने कुल मिलाकर दो-चार वाक्य कहे, 'नहीं। आखिर मैं क्या करती ? मैं कुछ नहीं जानती।' कई बार पूछने पर घुमा-फिराकर उसने बस यही जवाब दिया।

दूसरे ही दिन दोपहर को मौका पाते ही अपनी बेटी को गोद में उठाकर अपने कपड़े-लत्तों की गठरी लेकर वह वहां से भागकर अपने मायके चली आयी।

उसके बाप ने काफी हंगामा करके वंशी की कुछ निजी चीजें हासिल की थी। बाकी सब कुछ उसके भाइयों ने ले लिया। वंशी के कुछ अपने रुपये थे—दुकान से और बीड़ी के काम से मिले रुपये। उन रुपयों की खबर सास और जेठों को थी, मगर उन्हें वह ढूंढ़ नहीं पाये। करीब दो सौ रुपये थे जिन्हें आते समय गीता अपने साथ ले आयी थी। उतने रुपये, एक गाय और एक कच्चा घर—यह भी कम संपत्ति नहीं थी। इन्हीं के लिए वे लोग ढुलू की जान ले सकते थे। किसे पता चलता ?

वहीं हा के लिए उसकी देह की भूख जाग गयी थी

हां भाभी मैं उसके लिए तड़पता हूं, जेठ माह की तपती हुई धरती जिस तरह असाढ़ के काले बादलों के लिए तड़पती है, उसी तरह से मैं भी तड़पती थी, आज भी तड़पती हूं भाभी !' लेकिन उसकी ढुलू उसकी छाती पर पौधे की तरह उगी हुई है। प्यास के कारण उसका सीना भले ही कितना तपता हो, मगर डर भी लगता है कि कहीं ढुलू पर बादलों की बिजली न गिर पड़े। वह उसे जलाकर राख न कर दे। अपनी अबोध नजरों से वह बादलों के अंदर सिर्फ पानी ही नहीं देखती थी, उसमें छिपी आग भी उसे नजर आती थी।

नहीं। घनश्याम की भूख को वह जानती-समझती थी।

उसे ढुलू के बाप वंशीवदन की बातें याद आती हैं।

रात में ढुलू कोई दुःस्वप्न देखकर डर से रोने लगती। कभी भूख से रोने लगती। तब वह वंशी से कहती, 'मुझे छोड़ो।'

वंशी—सीधा-सादा वंशी ! शांत स्वभाव का वंशी। ढुलू का बाप वंशी। वह कहता, 'नहीं !' उसके स्वर में उसे गुर्राहट सुनायी पड़ती थी।

उसने अपनी भाभी से कहा था, 'नहीं इन्सान की देह। मेरी देह में ताप बहुत है मेरी भाभी ! लेकिन नहीं—जब तक ढुलू बड़ी नहीं हो जाती—। उहूं।'

उसने उन रुपयों से एक गाय खरीदी थी। उसके पिता ने बार-बार जाकर आखिरकार उसकी ससुराल से गाय हासिल कर ही ली। दुकान का दावा उसने छोड़ दिया। दो गायों का दूध बेचकर गीता अपना खर्च चला रही थी। वह पड़ोस के बाभन-कायस्थों के गांव में जाकर दूध बेच आती थी। पहले-पहले वह ढुलू को गोद में लेकर जाती थी। बाद में उसे अपनी मां के पास रखकर जाने लगी।

घनश्याम रास्ते में एक जंगल के किनारे इंतजार करता रहता। किसी दिन सीटी बजाकर, किसी दिन कंकड़ी मारकर उसे चौंकाकर सामने आकर खड़ा हो जाता।

गूंगी और अबोध नजर आने वाली गीता उस वक्त जैसे अपने उस स्वरूप को परे करके कुछ कौतुक से खीझती हुई। चौंककर परे हट जाती। मगर वह चौंकना उसका दिखावटी होता।

'अरे मैया री ! यह क्या आफत है ? रास्ता रोककर खड़े रहते हो।'

घनश्याम निर्लज्जता से हंसता। उसके काले चेहरे से उसके चमकते हुए दांत नजर आते। वह दोनों हाथों को फैलाकर उसका रास्ता रोक देता।

गीता के चेहरे पर नाराजगी की मुस्कान नजर आती। कहती 'मरण है ! यह कैसी आफत है ! रास्ता छोड़ो किसन लीला करने की और कोई जगह नहीं मिली? न समय देखते हो न आदमी। मैं राधा नहीं हूं। मेरा रास्ता छोड़ो।'

घनश्याम अचानक कुछ आक्रामक हो जाता। गीता उससे जितना डरती थी,

उतनी ही असहाय महसूस करने लगती आखिकार विनती करती तुम्हारे पैर पडती हू तुम्हारे हाथ जोडती हू

'नहीं, मैं नहीं सुनूगा। वह उसका आचल पकड़ लेता।

गीता मन ही मन थरथर कांपने लगती। आखिरकार वह अपनी सारी ताकत संजोकर साहस करके कहती, 'मुझे छोड़ दो। मेरी बेटी रोयेगी। मुझे छोड़ो। मेरी ढुलू—'

'नहीं, तुम कहो।'

'नहीं, मेरी बेटी—'

'तुम्हारी बेटी मेरी बेटी बनेगी।'

वह गूंगी और अबोध की तरह अपनी पुतलियों को भौंहों के ठीक नीचे स्थिर करके उसे देखने लगती।

गीता का चेहरा बड़ा सौम्य था। धुले-पुंछे कांच की तरह। जिसमें से सब कुछ नजर आता। उसके होंठों पर अविश्वास भरी हंसी, जिसमें थोड़ा विद्रूप का भी पुट रहता, साफ नजर आती। उसकी नजरें बिल्कुल सुई की तरह चुभने वाली थीं, जो एकदम आंखों के छोटे गोलक से सीधे निकालकर जैसे घनश्याम के दिल में उतर गयी।

घनश्याम ने कहा, 'मैं भगवान् की कसम खाता हूं।'

मगर गीता उसी तरह बेधक दृष्टि से देखती रहती।

'तुम्हें यकीन नहीं आ रहा है ?'

अपना हाथ बढ़ाकर गीता ने कहा था, 'मुझे छूकर कहो।'

'कसम से, तुम्हें छूकर कहता हूं।'

'क्या मेरी बेटी तुम्हारी भी बेटी है ? मेरी ढुलू तुम्हारी लड़की है ?'

'हां, तुम्हारी ढुलू मेरी ढुलू है, मेरी बेटी।'

'काली के थान पर हाथ रखकर कसम खा सकते हो ?'

'हां। चलो, अभी चलो।'

'ठीक है, चलो। मगर शंकरीतला चलना पड़ेगा। वहां पर मां के थान पर हाथ रखकर कहना पड़ेगा।'

घनश्याम ने सिर हिलाकर अपनी सहमति जतायी, 'ठीक है, वहीं चलो।'

'मगर इसके पहले जयनगर में जहां मुझे दुध पहुंचाना है, पहुंचा दूं। वहीं से चलूंगी। तुम गांव के बाहर इंतजार करो।'

'ऐसा ही करूंगा। चलो।'

शंकरीतला में देवी का थान बहुत पुराना है। कभी किसी राजा की वहां राजधानी थी।

कहते है कि उस राजधानी का शंकरी माई के कोप से ही विनाश हुआ अब वह जगह घने जंगल के बीच ईंटों का ढेर बनकर पडी थी बीच-बीच में टूटे मुडरों पर पीपल-बरगद के पेड़ उग आये थे। उनकी जटाएं भी झूलने लगी थीं। इस जंगल से एक पगडंडी गुजरती थी, जो पक्की सड़क से मिलती थी। जंगल के बीचोंबीच इस पगडंडी के किनारे ही एक विशाल पक्के चबूतरे से घिरे वटवृक्ष के नीचे शंकरीतला था। उसे वट वृक्ष की असंख्य जटाए वहां लटकती रहती थीं। सामने एक बलि स्तंभ गडा था। पुजारी आकर वहां पूजा करके चला जाता था। राहगीर गुजरते हुए प्रणाम करते हुए जाते। वे वटवृक्ष की जटाओं में मन्नतस्वरूप ढेला बांध देते कोई पैसे चढा जाता, कोई बतासे-मिठाई भी चढ़ाता था। इन्हें सियार खाते। शंकरी मां के दो प्रतीक थे।

घने जंगल के भीतर भयावह आधे प्रकाश आधे अंधकार के बीच उस जटाओं से घिरे वटवृक्ष के नीचे गीता ने अपनी दोनों आंखें विस्फारित करके पृथ्वी की उस आदिम देवी की महिमा और प्रभाव को महसूस करते हुए घनश्याम से कहा था, 'देखो, शंकरी मां कोई मामूली देवी नहीं हैं। तुम्हारे मन में जरा भी छल-कपट होगा तो तुम्हारा सर फट जायेगा और तुम मर जाओगे। समझ लो।'

घनश्याम ने मां के थान की वेदी पर हाथ रखकर कहा, 'मुझमें जरा भी कपट हो तो मां मेरा सर टुकड़े-टुकड़े हो जाए।'

गीता चकित होकर उसकी ओर देखती रह गयी।

घनश्याम कहे जा रहा था, 'गीता की बेटी मेरी बेटी है। दुलू को मैं अपनी बेटी की तरह पालूंगा। अगर मैं ऐसा न करूं, मां अगर मेरे मन में जरा भी कपट हो, तब—'

गीता की मूक और भोली-भाली दृष्टि खुशी से भर उठी। वह प्रेम से विभोर हो उठी। उसने खुली हुई प्रत्यंचा वाली धुनष की तरह बड़ी सहजता से खुद को घनश्याम की फौलादी भुजाओं में सौंप दिया। घनश्याम ने उसे खींचकर सीने से लगा लेना चाहा था। लेकिन गीता ने कहा था, 'नहीं, नहीं ऐसा मत करो। दिन के वक्त यहा कब कौन आ जायेगा। मुझे छोड़ दो।'

'नहीं !' घनश्याम ने उसे कसकर अपने आलिंगन में बांध लिया। वहां कोई तीसरा व्यक्ति आया भी नहीं। पेड़ों के साये के अंधेरे-उजाले में सिर्फ सुनसान शंकरीतला के जंगल में झींगुरों की पुकार सुनायी पड़ रही थी।

सांगा के पहले गीता के मां-बाप और पड़ोसियों के सामने उसने उसको वचन दिया था। लोगों के सामने घनश्याम ने कसम खायी थी। उसने यह बात तीन बार दोहरायी थी।

'दुलू आज से मेरी बेटी हुई, मेरी बेटी हुई, मेरी बेटी हुई।'

गीता की मा ने कहा था बेटा यह थोडी ना समझ ह बेटी को जरा सा छूते ही

बीच में गीता के बाप ने कहा, 'छूते ही - अरे बेटी से जरा तेज आवाज म बात करते ही बेटी के बदन पर छाले पड़ जाते हैं, साथ ही उसकी मां भी नाराज हो जाती है।'

गीता की मां सिर के पल्लू को थोड़ा आगे खींचकर माहौल के अनुरूप ठिठोली करते हुए बोली, 'बेटा, जब यह अपने मां-बाप की बेटी थी तब थी मिट्टी का खिलौना। इसे सजाया तो यह सज गयी, इसे खिलाया तो इसने खा लिया। शादी के बाद अपने मरद के पास यह कुछ और तरह से रही, सुना है वंशी की यह पालतू कुतियां की तरह रही। इसके बाद जब बड़े अरमानों की बेटी पैदा हुई, तब इसका रूप कुछ और ही हो गया।'

घनश्याम ने सिर झुकाकर जमीन पर सींक से निशान बनाते हुए मुस्कराकर कहा, 'मुझे पता है।'

'हां बेटा ! मुझे सब पता है। यह भी पता है कि तुम शंकरीतला में किरिया खा आये हो।'

'हां।'

'ठीक है। तब फिर सब के सामने यही तय रहा। ठीक हे, सांगा हो जाए। जवान लड़की है। वंशी के साथ उसकी शादी कच्ची उम्र में कर दी थी। समझते ही हो। अब मैं इसका बीसवां शुरू होगा। यह तो बेटा आग का गोला है। गर्म होकर न जाने कब फूटकर सब कुछ को आग लगा बैठे। इससे तो अच्छा, वह अपना मर्द चुनकर उसके साथ रहे। यह भी चैन से रहे, मां-बाप भी रहें।'

'तब फिर गीता की मां, वहू मां को मंगलध्वनि करने के लिए कहो, तुम भी कहो। रिश्ता पक्का हो गया। ठीक ?'

'एक बार इसके चेहरे से कपड़ा हटा दो।'

रेत के तट पर श्मशान में खड़ी होकर गीता बोली, 'जरा एक बार कपड़ा हटा दो न ?'

एक डोम ने पूछा, 'आखिर क्यों ?'

'मैं देखूंगी।'

'देखोगी ?'

'हां।'

'देखकर करोगी क्या ?'

'ऐं ?'

'देखने से लाभ क्या ? करना क्या है ? ऐं ?

गीता अपनी जानी पहचानी दृष्टि से उस डोम की ओर देखने लगी। वाकई, देखकर करूंगी क्या ?

'हमने तो सुना फांसी तो तुम्हारी गवाही से ही हुई है। गवाही देने की जरूरत क्या थी ? बोलो।'

'ऐं ?' वह अबोध की तरह उस डोम की ओर एकटक देखने लगी।

उनमें से किसी ने कहा, 'खोलकर दिखा ही दे भैया ! एक वार देख ही ले। यह छौंड़ा भी कैसा मर्दों जैसा मर्द था। जबर्दस्त ! इतनी ही दूर लाने में जैसे अर्थी का बांस कंधे को काटने लगा। अब तीन दिनों तक कंधा दर्द करता रहेगा।

उसने खुद ही उठकर लाश के पास आकर उसके चेहरे का कपड़ा हटा दिया।

तब तक दिन चढ़ आया था। सूर्य गंगा के पूरब ओर के जंगल के वृक्षो पर से होता हुआ गंगा के लगभग बीचोंबीच आ पहुंचा था। पूरा गंगागर्भ धूप से जगमगा रहा था। धूप की किरणें घनश्याम के चेहरे पर भी पड़ी। हां, यह वही घनश्याम था। बस चेहरा थोड़ा वदल गया था। मगर था वही घनश्याम। लेकिन क्या यह वाकई वही घनश्याम था ? उस वक्त उसकी दोनों आंखें मुंदी हुई थीं। उसकी दोनों पलकों को मूंद दिया गया था। घनश्याम की ये आंखें ही उसके रूप को उजागर करती थीं। इन आंखों में गजब का आकर्षण था। वह भी इन्हीं आंखों के चुम्बक से खिंची चली आयी थी। ओह, ओझा लोग मंतर पढ़कर बिल से सांप को बाहर खींच लाते हे। साप बिल में कुंडली मारकर बैठ जाता है, वह नहीं निकलना चाहता, लेकिन ओझा की मंत्र शक्ति से आखिर उसे अपना फन बिल से बाहर निकालना ही पड़ता हे। इसके वाद ओझा वीन बजाता है, फिर सांप को होश नहीं रहता, वह फन हिलाते हुए ओझा के करीब आकर खुद को पकड़वा देता है।

घनश्याम ने भी किसी ओझा की तरह ही उसे अपनी ओर खींच लिया था। मतर उसकी चितवन में था। नहीं, कहा जाए तो उसके हर अंग में था।

घनश्याम का वह जादू जब खत्म हुआ, तब तक वहुत देर हो चुकी थी। बहुत देर।

अचानक उसे एक दिन घनश्याम की चितवन में छिपी शैतान की दृष्टि नजर आयी। उसी आंखों में लोभ, क्रूरता, हिंसा और क्रोध नजर आया। वह उसी दृष्टि से दुलू को देख रहा था।

उसने चार महीने से बड़ी कोशिश करके दुलू को बाबू कहना सिखलाया। वह घनश्याम को बावू कहने भी लगी थी। पहले-पहल दुलू इन्कार करती। कहती नहीं। वह इस जवर्दस्ती से खफा भी होती। अपने पिता वंशी की उसे याद नही थी। किसे बाबू कहा जाए वह यह भी नहीं जानती थी। फिर भी वह कहती—नहो।

वह अपने नाना को ही बाबू कहने लगी थी

दुलू के इन्कार करने पर घनश्याम पहले हसता था वह दुलू से पूछता 'क्यों? मुझे बाबू क्यों नहीं कहोगी ?

दुलू इन्कार में सिर हिलाती।

'इन्कार मत करो। मैं ही तुम्हारा बाप हूं।'

'नही।'

'मैं ही बाप हूं। मैं तुम्हें खिलौने दूंगा। बाजार से डोरिया साड़ी खरीद लाऊंगा।'

दुलू खामोश रहती।

'अब कहो—बाबू !'

'नहीं, तू बाबू नहीं है।'

'नहीं हूं ? तब यह देख।' कहकर घनश्याम अपने सख्त बांस जैसे गठील हाथों से गीता की कोमल देह को खींचकर अपनी पत्थर जैसी सख्त छाती में भींच लेता। इसके बाद उसे कसकर भींचकर उसके होंठों पर अपने काले-काले होंठ रख देता। गीता विरोध करना चाहते हुए भी कर नहीं पाती थी, वह अवश हो जाती थी। उसका जूड़ा खुलकर बिखर जाता।

दुलू यह देखकर जोर-जोर से रोने लगती। दुलू के रोने की आवाज कानों मे पडते ही, जिस तरह डूबता हुआ आदमी सांस लेने के लिए पानी की सतह पर आने के लिए व्याकुल हो जाता है या गहरे पानी से उथले पानी में आने की कोशिश करता है, उसी तरह से गीता भी घनश्याम के सख्त बंधन से अपने को छुड़ाकर वह दुलू को गोद में उठा लेती थी। फिर वह उससे कहती, हंसते हुए ही कहती, बाप रे, वह बडा पाजी है न। उसे मारूंगी। तू चुप कर।'

इसके बाद उससे फुसफुसाकर कहती, 'अरी मुंहजली, तेरी मां को तेरा पिता प्यार कर रहा है, यह तुझसे बर्दाश्त नहीं होता। लोग ठीक ही कहते हैं सोत की लडकी कांटे की तरह बिंधती है। लो, जरा तुम भी दुलू को प्यार करो। इसकी चुम्मी लो। जाओ बेटा दुलू। बड़ी अच्छी लड़की है। अब मत रोना। बाबू अगर मां को प्यार करें तो मत रोना।'

'अचानक उस दिन देखा, घनश्याम की नजरें बदली हुई थीं, उसका मुखौटा उतर गया था, शायद उसने जानबूझकर ही ऐसा किया होगा। मैं उस समय घर में नही थी हुजूर—'

अदालत में वह अपना बयान दे रही थी। उधर कठघरे में खड़ा घनश्याम शैतानी नजरों से उसे घूर रहा था।

इस वक्त मृत घनश्याम की पलकों को जोर लगाकर खोलने पर भी अब वह शैतानी दृष्टि नजर नहीं आयेगी। उसकी पुतलियां स्थिर हो गयी थीं। शायद उन पर

सफेद झिल्ली भी पड गयी होगी

गीता कुछ कदम आगे बढ़ी , एकदम टिकटी के पास आकर खड़ी हो गयी ओह था तो वही घनश्याम ! जिसे देखकर उसका दिल खुशी से धड़कने लगता था। मगर उससे डर भी लगता था। उस दिन भी कठघरे में उसने उसकी वही शैतानी नजर देखी थी।

उस नजर को उसने उस दिन भली-भांति देखा था। वह कहानी है न कि कोई राक्षसी आयी थी राजा की रानी बनकर। ठीक यही हाल था। रात में वह रानी का चोला उतारकर राक्षसी बन जाती थी। अचानक एक दिन बड़ी रानी ने यह बात देख ली। उस दिन राक्षसी की नजर राजकुमार पर पड़ी थी। उसने भी उस दिन बड़ी रानी की तरह उसका असली रूप पहचान लिया।

अदालत में घनश्याम के वकील ने उससे जिरह करते हुए धमकाते हुए कहा था, 'सब मनगढंत बातें हैं।'

वकील की धमकी से वह चौंक गयी। इसके बाद वह भौंहें सिकोड़कर अपनी उसी परिचित अबोध दृष्टि से अपने आंचल का खूंट पकड़कर उसकी ओर देखती हुई बोली, 'नहीं।'

'नहीं क्या ?'

'नहीं, यह गढ़ी हुई बातें नहीं हैं।'

'तुम झूठ बोल रही हो।'

'बिल्कुल नहीं।'

'किसी की नजर भला राक्षस की तरह होती है ?'

'होती है। मैंने देखी है।'

हाकिम ने वकील में कहा, 'मुझे पूछने दीजिए। आप जरा चुप हो जाएं। गीता दासी तुम्हें क्या नजर आया था, बताओ ?'

'हुजूर, मैं पानी लाने गयी थी। दुलू पड़ोस के बच्चों के साथ घर के आगन के आम के पेड़ के नीचे खेल रही थी। यह चबूतरे पर बैठा था। किसी पड़ोसी से बातें कर रहा था। मैं घाट पर नहाकर घड़े में पानी भरके जल्दी ही लौट आयी। घाट की बाकी सहेलियां इस बात से मेरा मजाक भी उड़ाने लगीं। हुजूर मेरा मर्द दो-तीन दिन बाद शहर से उस दिन लौटा था। इसीलिए उन्होंने मजाक किया था। उनकी बातें भी ठीक थीं। मेरा मर्द शहर से काफी चीजें लाया था। लौटकर जिस वक्त मैंने चौखट के अंदर अपना एक पांव रखा, उस वक्त पड़ोसी चला गया था, दुलू के हमउम्र बच्चे भी चले गये थे, उस वक्त सिर्फ वह और दुलू थी। हुजूर, मैंने देखा यह घर के एक कोने में खड़ा होकर दुलू को गोद में लेकर राक्षसी नजरों से उसे घूर रहा था। इसकी पलकें तक नहीं झपक रही थीं। आंखें भावशून्य थीं। घर के जिस कोने पर

खाद का गड्ढा था यह उसी तरफ देख रहा था हुजूर यह देखकर मेरा सारा शरीर थर-थर करके कांप उठा। हड़बड़ाकर घर में घुसते वक्त पानी की मटकी दरवाजे से टकराकर टूट गयी। उस आवाज से भी इसका ध्यान भंग नहीं हुआ। मैं उन भीगे कपड़ों से ही दौड़ी और झपटकर दुलू को छीन लिया। हुजूर इसने दुलू को कसकर पकड़ रखा था। वह दुलू को मुझे देना नहीं चाहता था। दहाड़ता हुआ बोला, 'ए। नहीं।'

मैं भी चीखकर बोली, 'नहीं देगा ?'

दुलू घबराकर रोने लगी।

अब जाकर यह होश में आया। फिर हंसते हुए बोला, 'ओह, तुम हो ? मैं भी सोचूं कि कौन है ?'

मैं हुजूर उस वक्त इससे बात क्या करती, मैं इसकी आंखों में देख रही थी, इसकी उस विचित्र दृष्टि को देख रही थी, वह दृष्टि जो नदी में बहते हुए किसी मगर की तरह सतह पर आकर, धीरे-धीरे फिर से आंखों में समाती जा रही थी।'

हाकिम ने कहा, 'अच्छा, इसके बाद !'

वह कहने जा रही थी, 'इसके बाद—'

लेकिन उसके वकील ने कहा, 'नहीं, मैं जो पूछ रहा हूं, उसका जवाब दो।'

वह खामोश हो गयी। वकील ने पूछा, 'यह सब झूठ है।'

'नहीं।'

'तुम्हारी आंखों का धोखा है।'

'नहीं। मैंने अपने होश में देखा है।'

'वह क्या सोच रहा था—'

'हां, वह दुलू को मारकर उस खाद के गड्ढे में गाड़ देने की सोच रहा था।'

'तुम यह सब अपनी कल्पना से कह रही हो।'

'नहीं, सब कुछ मैंने देखा है।'

'जो कुछ मन में होता है क्या वह दिखायी पड़ता है ?'

'बिल्कुल। मैंने देखा है। बिल्कुल हूबहू नजर आता है। मैं सब समझ गयी थी, देखा भी था।' अपने को संभाल न पाने के कारण वह कठघरे की रेलिंग पर झुक गयी।

'अभी तुमने सब देख समझ ही लिया था तो अपनी बेटी को लेकर मायके क्यों नहीं चली गयी ?'

इसका जवाब देते समय वह फिर से मूक और निरीह लगने लगी थी। वह सोच रही थी कि यह कैसे कहे कि इसे छोड़कर जाने की हिम्मत उसमें नहीं थी। उसने अपने ताकतवर हाथों से मुझे इस तरह अपने सीने से जकड़ रखा था कि मुझमें

छुडाकर चले जाने की क्षमता नहीं रह गयी थी मैं सुन्न सी हो गयी थी मुझसे जाते नहीं बना

अपनी बेटी की हर पल चौकसी करते हुए मैं इसके कदमों पर पड़ी रही। हुजूर इसे कितना समझाया, पैरों पर पड़ी, कितनी रोयी। उस दिन के बाद से इसके भीतर का शैतान बाहर निकल आया। अपना असली रूप इसने दिखा दिया।

हुजूर, यह जब-तब ढुलू को धक्के देकर फेंक देने की तरह हटा देता। रात में ढुलू मेरी बायें तरफ रहती, यह अक्सर अपने हाथों या लातों से सोते वक्त उसे धक्का देकर गिरा देता।

हुजूर, यह किसी-किसी दिन मुझे अपने सीने से लगाकर प्यार करते हुए मेरे कानों में कहता, 'सुनो।'

मैं सब समझती थी, इसलिए कहती, 'नहीं।'

'नहीं क्यों, जरा सुनो सही।'

'बिल्कुल नहीं।'

'ठीक से सुन ले। तू खुद अपने हाथों से इसे दे दे। समझी ?'

हुजूर मैं चीख उठती, नहीं, नहीं। दोनों हाथों के नाखून से उसे नोच-खसोटकर काटकर अपने को छुड़ा लेती। इसके बाद ढुलू को अपने सीने से लगाये-लगाये फिरती। शोर मचाने की बात करके उसे डराती। यह गुमसुम बैठा मुझे देखता। कहता, 'पहले तुझे मारूंगा, फिर....।

मैं कहती, 'ठीक है, तू यही कर। तुम मेरी ही जान ले लो। मैं चिल्लाऊंगी नहीं। मुझे मार डाल। मगर ढुलू को मत मारना।'

यह मेरे बाल पकड़कर खींचता, शायद मुझे जान से खत्म करने के लिए नहीं बल्कि मुझे पीटने के लिए। मगर मुझे अपने पास खींचकर मुझे देखते हुए, जिस तरह मर्द औरत के सामने पिघल जाता है, उसी तरह यह भी पिघल जाता—मुझे प्यार करने लगता। लेकिन हुजूर राक्षस, राक्षस तो सहज में नहीं मरता। मेरा और उसका —दोनों का ही दुर्भाग्य ! दिनोंदिन आतंक बढ़ता ही गया। एक दिन मैं शाम से ही ढुलू को लेकर काम बंद किये बैठी थी। यह बाहर बेचैनी से चहलकदमी कर रहा था। बस एक ही रट लगाये था—उसे मुझे दे दे।

ढुलू रोने लगती। मैं उसे सीने से सटाये हुए कहती, 'डर किस बात का ? घबरा मत।'

यह कहता, 'यह हरदम रोती रहती है। इसीलिए कहता हूं, इसे मुझे दे दो।'

मैं कहती, 'हर्गिज नहीं।'

फिर कहती, 'इसे मैं अपनी मां के पास छोड़ आऊंगी।'

कठघरे में खड़ी होकर अपने बयान में वह बोली, 'हुजूर, यह पूरा राक्षस है।

इसने मुझसे कहा, इसे तू दुबारा अपनी कोख से पैदा करना। मुझे दे दे।'

डर से मेरा गला सूख गया। आतंक से दुलू का चेहरा भी सूख गया था। उसकी दोनों आंखें उसके बाप की तरह ही पानीदार थीं। उन्हीं आंखों से वह किसी बेजुबान की तरह घबरायी हुई मेरी ओर देखने लगी।

मैंने उसे ढाढ़स बंधाया, 'घबरा मत बेटी।'

मेरे सीने में अपना चेहरा छिपाकर वह सो गयी। मैं जगी बैठी रही। क्षणभर के लिए मैंने अपनी पलकें बंद नहीं कीं।

आखिरकार यह भी नींद का बहाना करके बाहर लेट गया। मैं उसका नाटक समझ नहीं पायी थी। मगर यह बात दूसरे दिन इसने मुझे खुद बतायी मगर हुजूर मैं उस रात को इसे सोता समझकर वहां से भागने के लिए निकलती तो यह दुलू को मुझसे छीनकर मार डालता।

लेकिन मैं बाहर निकली नहीं थी।

मगर दूसरे दिन धोखा खा गयी।

इसकी अधीरता और बेचैनी बढ़ती जा रही थी। यह उस वक्त हिंसा की कुटिलता में अपनी बुद्धि को सुई की तरह घिसकर पैना कर रहा था और यही सोचते-सोचते बेहद हिंसक हो उठा था।

डाइनों के बारे में कहा जाता है कि उसकी लोभी नजरें जिस पर पड़ती हैं, जिस पर वह अपना मंत्र प्रयोग करती है उसकी मृत्यु न होने तक वह विश्राम नहीं करती —वह 'बाट वहन' करती रहती है। 'बाट वाहन' का मतलब है—सिर नीचा करके पैर ऊपर करके। हाथों के बल चलना। उसके मन की शांति और इत्मीनान खत्म हो जाता है। उसे भूख-प्यास, नींद कुछ भी नहीं लगती।

यह बात सरकारी वकील ने हाकिम को समझायी थी इसीलिए श्मशान में खड़ी गीता को ये बातें याद हैं।

ओह !

ऐसा बहादुर आदमी। अब मरकर काठ हो गया था। धूप में हरकत के पड़ा हुआ था। घनश्याम का रंग काफी फीका पड़ गया था। उसे देखकर लगता ही नहीं था कि वह कैसा था। वह उस दिन सुबह उठकर कमरे के बाहर ताला लगाकर चला गया था। शाम तक लौटा नहीं। वह दिनभर उसी कमरे में उपवासी की तरह पड़ी रही।

हां एक प्रकार से उपवास ही था।

कमरे में एक घड़े में पानी था और एक घड़े में कच्चे चावल इसके अलावा नमक, मिर्च, धनिया और थोडा-सा गुड़ भी था। वही गुड़, चावल और पानी दोनों ने खाया थोड़ी-सी लाई भी पडी थी उसने दुलू को खिला दिया उसे उसने अपना

दूध भी पिलाया स्तनो मे दूध सूख चुका था दुलू उसे ही चूसन लगी।

इसके बावजूद उसने शोरगुल नही किया। किसी पड़ोसी का बुलाकर दरवाजा खोलने के लिए भी नहीं कहा।

उसने ऐसा क्यों नही किया ? दरअसल उसके लिए घनश्याम राक्षस होते हुए भी अप्रिय नहीं हुआ था। उसे वह दुश्मन नहीं समझती थी। उससे अलग होने की बात सोचकर उसका दिल कचोटने लगता था। घनश्याम से अलग होकर अपने जीवन की कल्पना वह आश्विन के बिना बादलों वाली धरती की तरह करती। वह मरुभूमि बन जाती। उसका सब कुछ सूख जाता, मर जाता।

बस दुलू के लिए ही उसकी चिंता थी। उसने तय कर लिया कि वह उसे अपनी मां के पास छोड़ आयेगी। वह उसे मां के पास रखकर वापस लौट आयेगी। लौटकर घनश्याम के सीने पर लोट जायेगी, उसे दोनों बांहों से जकड़कर कहेगी, 'लो, मे आ गयी हूं। अब तुम मेरी जान ले लो। गीता का गला दबा दो। तबीयत हो तो उसे नोच-नोचकर खाओ। तुम अपने पैरों पर जगह दो या अपने दिल में—जो खुशी हो करो।'

खैर, आखिरकार एक समय तो वह लौटेगा ही, दरवाजा तो खोलना ही पड़ेगा। उस दिन घर-बार गंदा ही पड़ा रह गया था, झाड़ू नहीं लग पायी था, चूल्हा नहीं जला था। खाना नहीं पका था। गायों को शायद वह जाते समय खोल गया होगा, नही तो उनके रंभाने की आवाज आती। लेकिन अपना घरबार छोड़कर, उसके लोगो को छोड़कर वह कहां जायेगी। गांव वाले भी क्या कहेंगे ?

आश्चर्य, अपराह्न के तीन बजे तक वह नहीं लौटा। बाहर का दरवाजा भी बद था। उसने किसी आदमी को आवाज भी नहीं लगायी थी।

उसके वकील ने कहा था, 'नहीं, तुम झूठ बोल रही हो। तुम्हारा चरित्र खराब था। इसलिए घनश्याम तुम्हें घर में बंद करके शहर गया था। तुम मारे शर्म के, भय क खामोश थी। ऐसा न होता तो तुम लोगों को पुकारती।'

हाय रे हाय ! तुझे यही कहलाना था ? उसने गवाही के कठघरे में अभियुक्त के कठघरे की ओर देखा था। घनश्याम पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा था।

एकदम पत्थर की मूर्ति।

उसका चेहरा कितना निष्ठुर लग रहा था। ओफ ! उसके चेहरे पर जरा भी संकोच नहीं था, अफसोस नहीं था। जेल में कुछ महीने निश्चिंत रहने से उसका बदन भर गया था। किसी ने जैसे कन्नी से घिसकर पालिश कर दिया था। गालों पर चर्बी चढ़ गयी थी। घनश्याम और खूबसूरत लगने लगा था।

मर जाने के बाद उसका चेहरा विवर्ण हो गया था, चेहरे की चमक खत्म हो गयी थी लेकिन उसका भरा हुआ चेहरा और छाती पहले जैसी ही थी। किसी सूरमा

जैसा लग रहा था सूरमा जैसा क्या वह वाकई बहादुर था ओह उसकी छाती देखकर लगता है

चौंक पड़ी गीता। उसकी छाती पर काटने का गोल निशान था—यह उसी के दांतों से हुआ था। उसने शेरनी की तरह उसे काट लिया था। उसने उसके लहू का नमकीन स्वाद चखा था। यह वही दाग था।

सरकारी वकील ने कहा था, 'धर्मावतार, शिशुहंता को भगवान् ने मुहर लगाकर चिह्नित कर दिया था। दुलू की मां के दांतों का निशान ही यह मोहर है। भगवान् के फैसले के परवाने पर नियति की यह मुहर लगी है।

उस दिन तीसरे पहर के बाद दरवाजा खुलने का शब्द हुआ। उसकी छाती तेजी से धड़कने लगी थी। गले में कुछ फंसना हुआ लग रहा था—हे भगवान्, अब वह आ गया।

दुलू उसकी गोद के पास नींद में बेसुध थी। उसने उसे अपने और करीब खींच लिया। उसने कमरे की खिड़की से बाहर झांका था। मगर दरवाजा खोलकर कमरे में वह नहीं आया था, आया था मुहल्ले के उस छोर पर रहने वाला योगीन्दरदास। घनश्याम के साथ ही वह खेती का काम करता था।

सिर्फ बाहर का दरवाजा ही नहीं, कमरे का दरवाजा भी खोलकर उसने कहा था, 'वह आज नहीं आयेगा। कल आयेगा। उसने तुम्हें अपने बाप के यहां चली जाने के लिए कहा है।'

उसका दिल फिर जोर से धड़कने लगा।

'बेहतर हो यहां से तुम चली जाओ।'

'वह कहां गया है ?'

'हम दोनों ही सदर गये थे। उसने कहा, 'आज मैं नहीं लौटूंगा। घर में अपनी औरत को ताला लगा आया हूं, उसके खराब चाल-चलन के कारण। उसके मायके का एक छोकरा मौका देखते ही उसके पास चला आता है। तुम जाकर दरवाजा खोलकर उसे अपने बाप के यहां चली जाने के लिए कह दो। ऐसी औरत की मुझे कोई जरूरत नहीं।'

उससे कुछ कहते नहीं बना। वह अपनी निरीह दृष्टि से योगिन्दर को देखने लगी। हाय रे हाय ! इससे तो अच्छा तू मुझे अपने लातों से ही रौंद देता। कलंक लगा कर भगा रहा है ? ठीक है। तेरा मंगल हो। तू राक्षस है, तू इस दूध पीती बच्ची को खाना चाहता है। अपनी बदनामी के डर से तूने मेरे मुंह पर बदनामी की काली कालिख पोत दी। और करता ही क्या ! ठीक है तू सुख से रह। मैं दुलू को लेकर चली जा रही हूं। भगवान् तुझे सुबुद्धि दे। तेरे मन के राक्षस का नाश करें।

वह ढुलू को गोद में लेकर निकल पड़ी थी गांव पार करके मैदान के किनारे आकर चौंक गयी उसे पश्चिम की ओर जाना था उस मैदान को पार करके उस 'धुर बाटी' के उत्तरपाड़ा के अंदर से होकर एक और छोटा मैदान पार करने के बाद 'छामना' गांव आता था। छामना को बायें रखकर और एक मैदान पार करके पक्की सड़क आती थी। पक्की सड़क से जाने पर दूरी बढ़ जाती थी। मगर पक्की सड़क दाहिनी ओर छोड़कर मैदान को पार करके शंकरीतला के जंगल से होते हुए दूसरी ओर निकलने पर उसका गांव आ जाता था।

दिन ढलने में अभी देर थी। एक पहर तो रहा ही होगा। चैत महीने के आखिरी दिन थे। आसमान एकदम साफ था। वह अपने आंसू पोछते हुए जंगल की ओर जा रही थी। अकेली होने के कारण थोड़ा डर भी लग रहा था। वह ढुलू को जगाने के लिए उसे हिलाते हुए बोली, 'ढुलू उठ ! बेटी कितना सोयेगी ! ढुलू—'

ढुलू जग गयी। अब वह तरोताजा हो गयी थी। अपनी मां से वह मीठी-मीठी बातें करने लगी। जिस तरह गुलदाउदी के पके फल को दबाने से वह फट-फटकर के चिटखने लगता है, ठीक उसी तरह।

'मां !'

'ढुलू।'

'घर जाऊंगी।'

'वहीं जा रही हूं। मामा के यहां।'

'मामा के यहां ?'

'हां, वहां मामा है, मामी है, नानी है।'

'बाबू ?'

'नहीं बाबू नहीं है। बाबू वहां नहीं है।'

'बाबू डांटेंगे नहीं ?'

'नहीं।'

'मां !'

'बेटी !'

'मां मुझे डर लगता है।'

'कैसा डर ?'

'बाबू का डर। मां !'

'नहीं बेटी ! अब बाबू तुझे छू भी नहीं सकता।'

अचानक छाया पड़ने लगी थी। शाम की ढलती हुई धूप का लाल रंग काला

पड़न लगा हवा जैसे थम गयी   भारी हो उठा

चलते-चलते आख उठाकर आसमान की ओर देखते ही गीता को चिंता आ गयी। पश्चिम के आकाश पर काले घने बादल नजर आ रहे थे। हवा भी बिल्कुल थम गयी थी।

आंधी आने वाली थी। शायद पानी भी बरसे। वह तेज चलने की कोशिश करने लगी। लेकिन वह काफी थकी हुई थी। दिन-भर पेट में कुछ नहीं गया था। थोड़ा-सा चावल, पानी और गुड़ बस इतना ही उसने लिया था। चलने में तकलीफ हो रही थी। मगर बिना चले उपाय ही क्या था। दुलू उसकी गोद में थी। मां शंकरी तुमने इसे बचा लिया, बचने का मौका दिया, उस राक्षस को इतनी बुद्धि तो दी—

ठीक उसी समय जोर से आंधी चलने लगी।

गीता उसी आंधी में तेज कदमों से चलते हुए शंकरीतला के जंगल में प्रवेश कर गयी। आह ! वह उस वट के पेड़ के नीचे जाकर खड़ी हो गयी। इसी समय बड़े जोर से बिजली चमकी।

'मां !'

दुलू चीख पड़ी।

'डर मत !' तभी बादलों की गरज सुनायी पड़ी। उसकी बात उसी में खो गयी। तभी वह चौंककर आतंक से सिहरकर खड़ी हो गयी। सामने उसका रास्ता रोककर घनश्याम खड़ा था।

'नहीं, नहीं।'

भय और आतंक से दुलू फूट-फूटकर रोने लगी।

'दे, इसे दे, मैं कहता हूं।' कहने के साथ ही उसके दो मजबूत बांस की तरह गांठ वाले सख्त हाथों ने संड़सी की तरह अंगुलियों वाले हाथों ने दुलू को पकड़ लिया, 'दे इसे !'

उसकी आंखें जल रही थीं। आसमान बादलों से ढंक गया था। चारों तरफ धूल उड़ रही थी। शंकरीतला के जंगल में अंधेरा घिरने लगा था, जैसे वह जमीन के नीचे से निकलकर ऊपर आ गया हो। दुलू दूसरे की बेटी थी। दुलू ने उसके गीता की यौवन से भरी छातियों को ओट में कर दिया था। गीता के मन के दरवाजे को छेंककर दुलू खड़ी थी। गीता दुलू को उसे सौंप नहीं रही थी।

कहती है, मारूंगी। गीता को वह जब भी पकड़ता है वह उसे काट लेती है।

वह भी उसे—। उसके दो भयावह सख्त हाथ और भी सख्त हो गये। उसने कोमल दुलू को बड़ी निर्दयता से खींचा। धरती पर उगे हुए तीन साल के पीपल या आम के चारे की तरह ही वह उसे पूरी ताकत से उखाड़ रहा था। गीता का दिल

उसी तरह कसमसा रहा था दुलू चीख रही थी बस दुलू की ही आवाज सुनायी दे रही थी य दोनों एकदम खामोश थे

ओफ, उसने उसे उखाड़ लिया। ओह !

'नहीं।' इतनी देर वाद गीता बड़े जोर से चीखी। दूसरे ही क्षण जिस तरह साप बाज पर फन मारता है, उसी तरह से गीता भी घनश्याम के सीने पर झपट पडी। उसकी पसलियों के नीचे उसका मुंह लगा। उसने पूरी ताकत से उसे आदिम अस्त्र दातों से उसे काट लिया। अपने नाखूनों से उसके दोनों हाथ नोचने लगी।

लेकिन घनश्याम की तुलना में उसकी ताकत कितनी थी !

वह धक्का खाकर एक तरफ गिर गयी।

घनश्याम अंधेरे में खो गया। एक बच्चे के भयभीत होकर रोने की आवाज धीरे-धीरे दूर होती चली गयी।

दुलू-दुलू-दुलू ! उस पूरे मैदान में उसकी प्रकार प्रतिध्वनित होने लगी। उस वक्त बस उसका रुदन और उसकी हाहाकार भरी पुकार ही वहां गूंज रही थी।'

'मेरी दुलू ! मेरी बच्ची ' ओ मेरी दुलू !'

यह वही राक्षस है। दुलू की मृतदेह दूसरे दिन एक तालाब के पानी में उतराते हुए मिली। घनश्याम उसकी गला दबाकर हत्या करने के बाद पानी के नीचे कीचड मे उसे गाड़कर भाग गया था।

अदालत में गीता ने कहा था—यह वही राक्षस है। वही है। इसके सीने पर जो दाग है, यह मेरे ही दांतों के निशान है।

घनश्याम कटघरे में पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा था।

हो जाए, इस राक्षस को सजा हो जाए। मेरी दुलू। गवाही देने के बाद वह कटघरे में रोती-रोती बाहर निकली। मगर उसने तो ऐसा नहीं सोचा था। शायद चाहा भी नहीं होगा।

आज तड़के ही उसे फांसी हो गयी थी। कल शाम को ही वह बेचैनी में अपने गाव से सदर में चली आयी थी। उसे फांसी होने वाली थी। वह चुपचाप अकेली ही चली आयी थी। तड़के जेल के फाटक के करीब आकर भय से कुछ दूर पर ही खडी रही। जब लाश.जेल से श्मशान की ओर ले जायी जाने लगी तब वह भी पीछे-पीछे चली आयी थी।

वह घनश्याम को ही देख रही थी। देख रही थी। उसकी चौड़ी छाती को। ओह उसके साथ क्या घट गया ? अब क्या होगा ? वह क्या करेगी ?

अब तक लकड़ियां आ पहुंची थीं।

चिता तैयार की जा रही थी। गीता धीरे-धीरे वहां से हटकर किनारे के जंगल

के पेड़ के एक तने से सटकर बैठ गयी

आज इस वक्त उसे दुलू की याद नहीं सता रही थी घनश्याम का मृत चेहरा उसके सामने था। उसकी लाश चिता पर रखी जा रही थी।

घनश्याम के लिए उसका दिल हाहाकार कर उठा। किसकी थी? किसकी ?

लौटते वक्त जब सांझ ढल रही थी, वह शंकरीतला के जंगल से गुजरती हुई शंकरीतला में आकर खड़ी हो गयी। पक्के चबूतरे पर वह औंधी होकर गिर पड़ी। अचानक उसे रुलाई आ गयी। वह फूट-फूटकर रोने लगी। उस नीम अंधेरे में वह दोनों बिछड़े हुए, प्राणियां के लिए रो रही थी, और पूछ रही थी, मां बताओ इसमें दोषी कौन है ?

शंकरीतला के जंगल में झींगुर पुकार रहे थे।

दीपा का प्रेम

यह मुझे पता था। कितनी बार मैंने कहा था। मगर कौन सुनता है ? मैं क्या कोई आदमी हूं कि मेरी बात सुनी जाए। अब हुआ, वही बात हुई न ?

चटर्जी गृहिणी ने तीन बार 'अब हुआ' कहने के बाद अपने माथे को तीन बार पीट लिया।

चटर्जी यानी भवनाथ चटर्जी बंगाल के जाने-माने व्यक्ति थे। सिर्फ बंगाल में ही क्यों, वे भारत भर में प्रसिद्ध थे। वे अध्यापक और दार्शनिक थे। गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे। उनकी आर्थिक हालत ठीक थी। उन्होंने गला खंखारकर कहा, 'मैं अपनी गलती मानता हूं। बार-बार स्वीकार करता हूं कि मुझे तुम्हारी राय मान लेनी चाहिए थी। अब तुम इस तरह से अपने माथे को पीटना बंद करो।'

चटर्जी गृहिणी को और गुस्सा आ गया। उन्हें लगा उनके पति ने जैसे इस प्रकार की बातों से उनके बदन को गर्म छन्ने से दाग दिया हो। वे चिल्लाती हुई बोलीं, 'हर्गिज नहीं। मैं चुप नहीं रहूंगी, हर्गिज नहीं।'

'क्या करोगी ? बताओ ? क्या करना चाहती हो ?'

'क्या चाहती हूं ?'

'हां । यह पता हो जाए तो फिर मैं अपने अपराध का प्रायश्चित कर लूंगा। बताओ, मैं वही करूं।'

भवनाथ की पत्नी की उम्र साठ से ज्यादा हो चुकी थी। वे पुराने जमाने की परंपराप्रिय खानदान की बेटी और बहू थीं। उन्हें ज्यादा पढ़ने-लिखने का मौका नहीं मिला था। सुविधा होते हुए भी उन्हें पढ़ाई का मामूली अवसर नहीं मिला था। ग्यारह साल की उम्र में उनकी शादी हो गयी थी। उनके स्कूली जीवन की वहीं समाप्ति हो गयी। भवनाथ के आज के इस सवाल का वे जवाब कैसे देतीं ?

वे शिकायत करके ही खलास हो गयीं। उन्होंने कहा, 'मुझे पता नहीं। मेरा दिल कसक रहा है। मेरे नवेन्दु की इकलौती लड़की दीपा, ओह, तूने यह क्या किया दीपा !'

भवनाथ बोले, 'अरे छीः छीः ऐसे नहीं रोते। तुम भी क्या करती हो। उसने

जो कुछ भी किया आज इस शुभ दिन में इस तरह रोकर उसका अमंगल मत करो

भवनाथ गृहिणी को यह बात पसंद नहीं आयी। बोलीं, 'तेरा नाश हो दीपा। भगवान् तुझे उठा लें।'

भवनाथ चटर्जी के बड़े लड़के का नाम था नवेन्दु। आज अठारह साल हुए उसकी अकाल मौत हो गयी थी। उस वक्त दीपान्विता यानी दीपा पांच साल की थी। दीपा की मां शोभा जैसी गुणी औरत आज के जमाने में बहुत कम होती हैं। अठारह साल से वह अपने सास-ससुर के पास नव वधू की तरह ही रह रही थी। नहीं यह कहना भी गलत होगा, वह उनकी बेटी ही बन गयी थी। ससुर अपने स्वास्थ्य के बारे में जरा भी लापरवाही बरतते तो उन्हें डांट देती, सास के हाथों से छीनकर घर का काम करती। अपनी लड़की दीपा के लाड़-दुलार के मामले में वह अकेली ही दोनों से झगड़ा करती।

दीपा के प्यार की भी सीमा नहीं थी, लाड़ की भी नहीं। ससुर भी जब तक विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे—अभी हाल तक वे घर लौटते हुए कोई न कोई चीज जरूर ले आते। उनका मन नहीं मानता था। घर आते ही मीठी आवाज में पुकारते, 'दी-पा!'

दीपा भी भागती हुई आती—दा-दू ! 'दा' शब्द पर काफी बल देती, फिर 'दू' को संक्षिप्त कर देती। जिस तरह से भवनाथ बाबू दी-पा पुकारते थे। इसमें एक संगीतमय ध्वनि होती। वह सामने आकर अपना हाथ फैलाकर कहती—ला-ओ।

'ला-ओ ! वाह, वाह ! तुझे दूं क्या ?'

'जो चीज लाये हो।'

'अपना चेहरा करीब लाओ।'

दीपा अपना चेहरा करीब लाती। भवनाथ बाबू उसके गालों को चूमकर कहते, 'यह लो ! पुच्च !'

दीपा हाथ-पैर झटकते हुए ऊं-ऊं करके रोने लगती। उसके रोने में न कोई वाक्य होता, न आंखों में आंसू, चेहरे पर कातरता, क्षोभ या वेदना की छाया भी नहीं होती थी—बल्कि देखकर लगता शायद वह हंस रही हो; हाथ-पैर झटकने में भी एक लय रहता था। दायां हाथ और बायां पैर एक साथ ही हिलता था और उसी तरह बायां हाथ और दाहिना पैर।

भवनाथ बाबू हंसने लगते। भवनाथ गृहिणी भी हंसतीं। फिर कहतीं, 'अब जो लाये हो, दे भी दो। नाहक क्यों रुला रहे हो ?'

भवनाथ बाबू जेब से लेमनचूस निकालकर उसे देते और अपनी पत्नी को जर्दा

का डिब्बा रंगबिरंगा डिब्बा देखकर दीपा मचलते हुए कहती नहीं म लमनचूस नहीं लूगी मैं वह लूगी

अरे यह तो जर्दा है

वही लूगी। आ-आ-आ-आ।

'जर्दा लेकर क्या करेगी ?'

'पान मे डालकर खाऊंगी। आं-आं-आं।'

'अरे तू पान-जर्दा खायेगी ?'

'क्यों नहीं खाऊंगी। तुम भी तो खाते हो।'

अब शोभा से वर्दाश्त नहीं होता था। अपना काम छोड़कर वह झटपट आकर बिगड़ते हुए कहती, 'तू जर्दा खायेगी ? दादी जर्दा खाती है तो तू भी खायेगी ?'

'हां खाऊंगी !'

'ठहर, तुझे खिलाती हूं। जर्दा खायेगी—'

'खाऊंगी।'

'चुप !'

'खाऊंगी।'

'चुप।'

शोभा उसका हाथ पकड़ लेती, दीपा भी जोर-जोर से रोने लगती। भवनाथ बाबू उसे रोकते हुए कहते, 'हाथ छोड़ दो बहू मां। छोड दो।'

उसका हाथ छोड़कर शोभा कहती, 'पिताजी, यह दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है। किसी की परवाह नहीं करती। मुझे भले ही न माने, आपकी भी परवाह नहीं करती। आप इसकी शैतानी नहीं जानते। उस दिन आपकी एक जली हुई चुरुट मुंह में दबाकर कुर्सी पर बैठी हुई थी। मैं देख लेती तो उसका मुंह दाग देती। मां ने देखा था। मां से ही मुझे पता चला था। मां ने मना किया था—नहीं तो—' अपनी बात अधूरी छोड़कर वह बोली, 'अब इसका फल देखिए, अब जर्दा खाना चाहती है।'

यह सुनकर भवनाथ बाबू बड़ी गंभीरता से कहते, 'तुमने जली सिगार मुंह में रखी थी ? ऐं।'

दीपा उनकी ओर देखते हुए कहती, 'तुम्हीं तो रख गये थे। मैं क्या करती।'

'तुमने उसे छुआ क्यों ?'

'वाह, मैं तो उसे देख रही थी।'

उसकी मां कहती, 'तुम झूठ बोल रही हो दीपा, तुमने मुंह में नहीं लगाया था?'

'वही तो बताने जा रही थी। मैंने उसे उलट-पुलटकर मुंह में लगाकर देखा कि उससे धुआं निकलता है कि नहीं। उसमें आग है या नहीं।'

भवनाथ बाबू ठठाकर हंसने के बाद कहते 'वंडरफुल तुम मुंह में डालकर देख रही थीं कि धुआं निकलता है कि नहीं वह भी उसमें आग है कि नहीं यह देखने के लिए। यह बात तो छून से ही पता चल जाती।

'वाह, हाथ नहीं जल जाता ?'

भवनाथ बाबू फिर हंसकर कहते, 'तुम्हें फुल मार्क मिला है। सारा कसूर माफ। अगर गलती किसी की है तो वह इस दादू की है। उसका पनिशमेंट यह है कि चुरुट पीना छोड़ना पड़ेगा। अगर नहीं छोड़े तो दीपा हैज़ एवरी राइट टु स्मोक !'

उसी के बाद से भवनाथ गृहिणी कहतीं, 'तुम इस लड़की का भविष्य बिगाड़ दोगे।'

भवनाथ बाबू ने तभी से चुरुट पीना छोड़ दिया था। मगर उनकी पत्नी जर्दा-पान नहीं छोड़ पायीं। दीपा ने भी कभी जर्दा-चुरुट यहां तक कि पान भी नहीं छुआ। बल्कि, इनके बारे में उसकी राय थी कि दोनों ही गंदी आदतें हैं। बेहद गंदी आदत। पान-जर्दा ज्यादा गंदी चीजें होती हैं और सिगरेट-चुरुट अनहेल्दी, खतरनाक और दुर्गन्धयुक्त। बाप रे, खांस-खांसकर हालत खराब हो जाती है। एक बार कश लेने से दिन-भर खांसी आती रहती है। उससे तो शराब बेहतर है, अगर वह तेज न हो।

भवनाथ बाबू ने चकित होकर अपनी पोती से पूछा, 'इस मामले में तुम्हारा कोई अपना अनुभव है क्या ? तुमने कभी पिया था या पी रही हो ?'

हंसकर दीपा अपने शैम्पू किये बालों को झटकते हुए बोली, 'अगर अनुभव की बात कहूं तो इसमें भी दादू तुम्हें परेशान होने की जरूरत नहीं, लेबॉरेटरी में कैमेस्ट्री के प्रेक्टीकल क्लास में जवाब देने के लिए जरूरत भर चखी थी। दैनिक जीवन में इससे कोई लेना-देना नहीं है। गणित के अभ्यास की तरह यह भी पढ़ाई का हिस्सा है, उससे ज्यादा कुछ नहीं।'

एम.ए. की पढ़ाई के बाद ये बातें हो रही थीं। भवनाथ बाबू अवाक् होकर कुछ क्षण तक अपनी पोती की ओर देखते रहे, फिर उनका ध्यान टूटा। क्योंकि वर्तमान काल यानी सन् 1962-63 तक के छात्रों का उन्हें भी काफी अनुभव था। उनके जीवन तरंग का उल्लास एवं उच्छ्वास और क्षोभ-विक्षोभ के वेग को उन्हें खींचकर संयत करना पड़ा था। जीवन-भर अपने काम में वे विशिष्ट माने जाते थे। अपना व्यक्तित्व भी उन्होंने अर्जित किया था। मगर उनको भी हार मानकर सिर झुकाकर वहां से चले आना पड़ा था। कॉलेज के अध्यक्ष के पद से करीब आठ महीने पहले वे सेवामुक्त होकर घर बैठ गये थे। दीपा ने उस समय एम. ए. की पढ़ाई पूरी ही की थी। वह भी घर में बैठकर संगीत, सिनेमा, साहित्य में अपने को व्यस्त किये हुए थी उसी ने अपने दादा से कहा था 'दादू, तुम नौकरी छोड़ दो तुम इनसे नहीं जीत

कते। तुम इस युग के आदमी नहीं हो।

उसकी ओर देखकर भवनाथ ने कहा था, 'ठीक कहती है।' उसकी सलाह पर ़वनाथ ने नौकरी से छुट्टी लेकर उसी बीच सेवा से अवकाश ले लिया था। घर में ़ठकर उन्होंने कल्पना की थी कि दीपा की पढ़ाई-लिखाई में वे उसकी मदद करेंगे। ़ायद अपने परिपक्व जीवन का रस से भरपूर बीज संपन्न फल भी उसे सौंप सकते ़। उन्होंने आरंभ भी कर दिया था। लेकिन ठीक इसी वक्त दीपा का परीक्षाफल निकला। दीपा इतिहास में फर्स्ट क्लास पास करके अपनी सफलता की खुशी में लगभग तीन महीने तक घर से बाहर उन्मुक्त विचरती रही थी। भवनाथ बाबू उसकी इस हरकत पर वात्सल्य से हंसे थे। लेकिन दीपा की दादी यानी भवनाथ बाबू की पत्नी शंकित होकर उसका रास्ता रोककर खड़ी हो गयी थीं। उनके पीछे दीपा की मा शोभा भी थी।

दादी ने विरोध करते हुए कहा था, 'इस तरह से घूमना फिरना, मस्ती करना ठीक नहीं है। तूने सोचा क्या है ? तू सोच रही है कि एम॰ ए॰ पास करने के बाद तेरे पंख निकल आये हैं ?'

दीपा हंसकर बोली थी, 'ऐसा होता तो मैं अभी आसमान में उड़ जाती। ऐसी कोई बात नहीं है। मुझे जाने दो, काम है।'

दादी ने अपने पति की ओर देखते हुए कहा, 'मैं जाने कब से कह रही हू कि दीपा की शादी कर दो। पढ़ना-लिखना भी हो तो शादी के बाद करे। लेकिन मेरी बात कौन सुनता है ? लड़की तो अपने दादाजी के बढ़ावे पर अपने को रानी लक्ष्मीबाई समझती है, अब रानी दुर्गावती बनना चाहती है।'

'नहीं दादी, मैं सिर्फ दीपा हूं—दीपान्विता चटर्जी। लेकिन तुम मेरा रास्ता छोड दो, मैं इस तरह रोके जाने को अपना अपमान समझती हूं। इसे मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती।'

मां ने पूछा, 'अपमान ? अपमान की क्या बात हुई ?'

'तुम लोग मुझ पर अविश्वास कर रही हो। परीक्षा खत्म होने के बाद से आज तक मैं पचास बार सुन चुकी हूं कि मुझे ख्याल रहे मैं लड़की हूं।'

'तू लड़की नहीं है ?'

'पहले मैं इन्सान हूं फिर लड़की और वह भी सिर्फ दुर्घटनावश। अब पहले का जमाना नहीं रहा। मिसेज भंडारनायके कुछ दिन आगे तक श्रीलंका की प्रधानमं़ थीं। श्रीमती कृपलानी अब भी यू. पी॰ की चीफ मिनिस्टर हैं। इसलिए लड़की हो़ के कारण घर में रहना ही सबसे ज्यादा सुरक्षित है और यही कर्त्तव्य है, इसे मैं ऩ मानती। दादू से ही पूछकर देख लो।'

दादू ने सिर झुकाकर जमीन की ओर देखते हुए कहा, था, 'वही बात सो

रहा हू दीपा तूने कुछ दिन पहले धूम्रपान और मदिरापान के बारे म जो कहा था

'माफ करना दादू तुम्हें टोक रही हूं। धूम्रपान या मदिरापान शब्द का प्रयोग मेरी उस दिन की बातों के संदर्भ में करना उचित होगा ? मान लो, बीमारी में किसी को ब्रांडी या अडा लेना पड़े। काफी लोग ब्रांडी लेते हैं, लेकिन उन्हें पियक्कड़ नही कहा जा सकता। उसी तरह इन दोनों का स्वाद जानने की भी अगर कोई कोशिश करता है तो उसे भी गलत नहीं ठहराया जा सकता। क्या तुमने इन दोनों शब्दो पर अनावश्यक जोर नहीं दिया ? लेकिन दादू मुझे देर हो रही है। मेरे दोस्त इंतजार कर रहे हैं।'

भवनाथ बाबू ने कहा था, 'उसे जाने दो बहू मां ! और सुनो, तुम भी रास्ता छोड दो।'

'रास्ता छोड़ दूं ?'

'देना पड़ेगा। नहीं तो शायद प्रवाह में तुम्हें भी बह जाना पड़ेगा। विष्णु के चरणों से उत्पन्न गंगा को ब्रह्मा ने कमंडल में रखा था। गंगा बूंद-बूंद बढ़ते हुए जिस दिन उफना गई, उस दिन उसने ऐरावत को भी बहा दिया था।'

'दादू, तुम भी क्या खूब हो ! यह सब पुराण-वुराण मुझे ज्यादा अच्छा नही लगता। लेकिन तुम इतनी बढ़िया उपमा देते हो कि क्या कहूं ! वंडरफुल ! तुम चिंता मत करो। आई मीन डोंट वरी। तुम्हारे ऐरावत सरीखे बदमाशों को बहाने की क्षमता वाकई मुझमें है।'

यह सब झूठ हो गया था। आज ही अभी सांझ के वक्त किसी अनजान महिला ने टेलीफोन पर यह भयानक सूचना दी थी। वह बोली थी, 'आप लोग मुझे पहचानते नहीं हैं। मैं दीपा—दीपान्विता—आपकी पोती के साथ पढ़ती थी, एक साथ ही पास भी किया है। दीपान्विता की आज शादी हो गयी है। करीब दो घंटे पहले। दीपा ने अपनी चिट्ठी में सारी बातें स्पष्ट रूप से लिख दी हैं। वह चिट्ठी मै खिड़की से भीतर फेंक आयी हूं। मैंने सोचा था, आपके हाथ में ही दूंगी, लेकिन घर के दरवाजे पर पहुंचकर हिम्मत नहीं हुई—डर गयी। आप ढूंढ़ेंगे तो वह चिट्ठी मिल जायेगी।'

इतना कहकर उसने टेलीफोन रख दिया था। वृद्ध भवनाथ बाबू ने कई बार हैलो-हैलो करके रिसीवर रखकर लगभग हड़बड़ाते हुए नीचे उतरकर बैठकखाने में जाकर उस चिट्ठी को ढूंढ़कर उसे पढ़ा। पढ़ने के बाद एकाएक उनकी समझ में नहीं आया कि वे क्या करें।

'दादू तुम लोग मुझे माफ करना खासकर तुम क्योंकि तुमसे लेन-देन का

मने पूरा हिसाब रखा हुआ है जो मुझे मिलना चाहिए तुमने मुझ उससे कहीं ज्यादा दिया है। दूसरों की मैं चिंता नहीं करती। उनसे मैं क्षमा भी नहीं मांगूंगी। जरूरत भी नहीं है। मैंने आज शादी कर ली है। उसे मैं काफी दिनो से प्यार करती हूं। जाने कब से। इतने दिनों तक शादी इसलिए नहीं की थी क्योंकि इसे लेकर मैं ही अंतर्द्वंद्व मे थी। अब तक कुछ फैसला नहीं कर पा रही थी। आज शादी कर ही ली। लडके को तुम जानते हो। हमने घर में जो सत्यदासी थीं, उन्हीं सत्यदासी का नाती देवप्रिय हालदार है। उसकी तुम्हें जरूर याद होगी—वह अक्सर हमारे यहां आता था, तुमने उसकी अनेक बार सहायता की थी। हायर सेकेंडरी की फ़ीस के लिए तुमने उसे पचास रुपये दिये थे। आज मैंने उसी से शादी कर ली। हम दोनों काफी दिनो से एक-दूसरे से प्यार करते थे। देवप्रिय का परिचय आज सिर्फ सत्यदासी के नाती के रूप में ही नहीं है, बल्कि अब वह एम. ए. पास करके नौकरी करता है। मैंने भी कल से एक नयी नौकरी पकड़ ली है, तुम्हें नहीं बता पायी थी। मैं एक कॉलेज मे पढाने लगी हूं।

अब तुम लोगों से मुझे कुछ और नहीं लेना है। मकान या जो भी रुपये उत्तराधिकारी के तौर पर मुझे मिलने हों, मैं उन सबसे अपना दावा खारिज कर रही हू। मैंने अन्याय किया है इसलिए अपना दावा खारिज कर रही हूं, ऐसी बात नही है, यह तो इसलिए कर रही हूं क्योंकि तुम लोग मुझे दंड देने के लिए एक यही काम करके खुश हो सकते हो। इसीलिए यह काम मैं खुद ही कर रही हूं।

तुम हम लोगों का प्रणाम स्वीकार करना। दादी और मां को हमारा प्रणाम ग्रहण करने में कोई बाधा है या नहीं, पता नहीं, 'कहीं इसमें उनके परलोक जाने वाली साफ-सुथरी चिकनी सड़क पर मैं कांटे न बिछा दूं। इति।

दीपान्विता

2

किसी ने ध्यान नहीं दिया था। ध्यान देने लायक वह बात भी नहीं थी। ऐसा तो इस पृथ्वी पर हमेशा ही घटता रहता है।

सत्यदासी उस घर की चौबीस घंटे की नौकरानी थी। भवनाथ बाबू के यहा ही उसने लगभग अपना अंतिम समय बिताया था। सत्य मर गयी थी लेकिन सत्यन्यात्या नामक शब्द आज भी मौजूद है। भवनाथ गृहिणी अभी तक कहती है, 'सत्य तो चली गयी लेकिन 'सत्यन्यात्या' नित्य सत्य कर गयी है।

'नित्य सत्य' शब्द भवनाथ बाबू का ही था। वह भवनाथ गृहिणी के अंतर मे बैठ गया था। सत्य जिस लत्ते से जूठी जगह साफ करती थी, उसे कभी धोती नही थी, अंततः कभी ऐसा नजर नहीं आया। भवनाथ बाबू की पत्नी इस बात को लेकर

उसे झिडकती थीं लेकिन सत्य उसे अनसुना कर देती वह चुपचाप अपना काम किये जाती। वह लत्ता बरामदे के किनार पड़ा रहता था—जब भी कोइ खाकर उठता सत्य जूठी थाली उठाकर उस लत्ते से उस जगह पर पोंछा मारकर जूठी थाली लेकर बाहर निकल जाती। बरामदे के निर्धारित स्थान पर उस लत्ते को धप्प से गिराकर जूठे बर्तन लेकर नल के नीचे रख आती।

बहू की नजर पड़ने पर वह कहती, 'सत्य, यह क्या कर रही हो ? जूठी जगह इस तरह साफ हो गयी ?'

लेकिन कौन किसकी सुनता ? सत्य रसोई के दरवाजे पर आकर रसोइये से झगड़ा या बातें करने लगती।

गृहिणी नाराज होकर चीखतीं—सत्य !

इस बार सत्य गर्दन घुमाकर पूछती, 'क्या कह रही हो ?'

'इस तरह से जूठा फर्श साफ किया जाता है ? लत्ता तो खुद ही जूठा था। उसे धोया तक नहीं।'

'जूठन साफ करने वाला लत्ता भी भला कितनी बार धुलता है ? अगर साफ करने बैठूं तो कितनी बार कचारंग ? और तुम लोग भी मुझे लत्ते के लिए कितने कपड़े दोगी ?'

'लेकिन यह तो जूठा है।'

'नहीं, जूठा कैसे हुआ ?'

'जूठन साफ करने पर वह जूठा नहीं हुआ ?'

'नहीं, मैं लत्ते को तड़के धोकर उस पर रोज गोबर छिड़क देती हूं। गोबर देने से ही तो वह शुद्ध हो जाता है।'

भवनाथ बाबू सुनकर हंसते हुए बोले थे, 'उसका नाम है सत्य ! और उसका लत्ता ! वह तो एक साथ ही सत्य और नित्य वस्तु है। सत्यनित्य लत्ता। उससे पूरी दुनिया पवित्र और साफ हो जाती है।'

'यह बात आपने ठीक कही बाबूजी ! दिन-रात जूठे का चक्कर, जब देखो तब जात चली जाने का डर, छूत का चक्कर—यह सब क्या है ? बच्चा खाकर कपड़े मे हाथ पोंछकर उठ जाता है। बाबू लोग दावत खाकर गिलास में हाथ डुबोकर रूमाल से हाथ पोंछकर उसे जेब में रखकर उठ जाते हैं। अगर ऐसी बात है तो फिर पहनावे के शाल-दुशाले सभी जूठे हो जाते हैं। लेकिन ऐसा नहीं होता। कौन यह सब कचारता है ? जूठा समझो तो जूठा, नहीं तो नहीं।'

सत्य दखिनही थी। चौबीस परगना की रहने वाली। जात की कावड़ा जोगी या ऐसी ही किसी जात की रही होगी, इस बारे में किसी ने जानने की जरूरत नहीं समझी थी। भवनाथ बाबू वगैरह सब कलकत्ता के निवासी थे। उस पर सन् 1930

के बाद का समय था छुआ छूत जात-पात सब खत्म करने का जमाना आ गया था इसके अलावा लडकिया भी रसोईघर से कडाही कलछुल छोड्कर घर के कामकाज की दुनिया से बाहर आकर सम्मानजनक काम करेंगी—वातावरण में ऐसी हवा चलने लगी थी, घरेलू काम के लिए अब किसी भी जात की होने से काम चलने लगा था। यही प्रचलन में आ गया था। भवनाथ बाबू की गृहिणी की घर से बाहर नौकरी करने की न रुचि थी और न क्षमता ही, लेकिन घरेलू काम करने की भी रुचि और क्षमता दोनों ही नहीं थीं। इसीलिए जात-पांत मानकर चलने से कोई लाभ नहीं था। सिर्फ काम करने वाली का चेहरा ही उन्होंने देखा था, जिसके हाथ का पानी पीने में कोई अरुचि न हो। सत्य का चेहरा बुरा नहीं था। इसके अलावा सत्य का एक और गुण था, वह विपत्ति के समय खूब सेवा करती थी। सत्य का दिल भी बड़ा कोमल था। वह सबसे प्रेम् का व्यवहार करती थी।

यह उसी सत्यबाला का नाती था। सभी को उसकी याद थी। एक आठ-नौ साल का काले रंग का स्वस्थ बालक जिसका नाम देवू था, उनके यहां आया करता था। वह अपनी नानी के पास ही आता। वह नानी के पास किताब के लिए या अपने कपड़ों के लिए रुपये लेने आता। सिर पर तेल, वह भी सरसों का, खूब चुपड़े होता। पहनावे में पेंट बल्कि कहा जाए तो छींट का जांघिया और एक हाफ शर्ट होता। वह बच्चा पाठशाला में पढ़ता था। पढ़ने-लिखने में होशियार था, लेकिन उसका बाप उसे किताब, कापी, स्लेट, पेंसिल, कपड़ों के लिए पैसा नही देता था, इसलिए उसकी मां उसे अपनी मां के पास भेज देती थी। मां कलकत्ता में एक बाबू के यहां काम करती है, बाबू कॉलेज में मास्टर हैं, भले आदमी है। सत्य को भी खुराकी के अलावा हर महीने पांच रुपये मिलते थे। उसके रुपये खर्च नही होते थे, बचते ही थे; उन जमा रुपयों से वह पांच-सात रुपये, जो संभव होते, नाती की पढ़ाई में खर्च कर देती।

भवनाथ बाबू को वह लड़का अच्छा लगा था। वे हर साल दुर्गापूजा के वक्त उसके लिए खाकी पेंट-शर्ट, गंजी और सैंडिल खरीदते थे। इसके अलावा स्कूल का सत्र शुरू होते समय किताब-कापियां, उसकी जरूरत के अनुसार उपलब्ध कराते थे।

उस समय दीपा कितने साल की थी ?

जब देवू पहली बार आया उस वक्त उसकी उम्र आठ-नौ साल की थी; दीपा पाच-छह साल की। छह नहीं—पांच ही, क्योंकि उसी साल दीपा के पिता नवेन्दु की मृत्यु हुई थी।

दीपा का लाड़-प्यार उस समय सावन-भादों की अमावस्या की बढ़ी नदी की तरह उफना उठा था।

अपने पिता का अभाव वह न महसूस कर पाए, इस मर्मभेदी वियोग की

असहनीय वेदना उसके मन को आहत न करे इसलिए वह जब भी जो कुछ भी मांगती उसे दिया जाता और न चाहते हुए भी उसे ढेर सारी चीजें लाकर दी जाती और वह भी सब महंगी-महंगी। महंगे कपड़े, जूते से लेकर महंगे खिलौने, रेलगाड़ी, उड़ने वाला जहाज वगैरह ढेरों चीजें। सुबह से शाम तक वह कम से कम छः बार अपना फ्रॉक बदलती। ढेर सारे खिलौनों के बीच बैठकर वह खेला करती। उसके पास एक खूबसूरत सेल्यूलॉयड की गुड़िया थी, जिसे लिटाने पर वह आंख बंद कर लेती थी और उठाकर खड़ी कर देने पर वह आं की आवाज करके आंखें खोलती थी। उसे दूध पिलाने के लिए उसने उसके होंठ की जगह पर एक छेद कर दिया था और उसे वाकई सुतई या चम्मच से दूध भी पिला देती थी।

देवू चकित होकर उसे देखता और दीपा के किसी भी आदेश के पालन में खुद को धन्य महसूस करता।

सिर्फ खिलौने, कपड़े-जूते में ही दीपा का ऐश्वर्य सीमित नहीं था, उसके पास ढेरों चित्रों वाली किताबें भी थीं। भारतीय, विलायती, रूसी, अमरीकी हर तरह की। इसके अलावा तस्वीर बनाने का सामान भी था। सुंदर कापी, रंगीन पेंसिलें, वाटर कलर बाक्स, ब्रुश, हारमनिका—उसके साथ खिलौना बंदूक-पिस्तौल—क्या कुछ नहीं था!

देवू ललचायी नजरों से इन सबको देखता। कभी-कभी डरते-डरते बड़े संकोच से इन्हें छूता, इन्हें हाथ में लेकर देखता।

कभी दीपा उसके हाथ से छीन लेती। कभी कहती, लेगा? तुझे चाहिए? तुझे खरीद दूंगी। दादू से कह दूंगी वे ला देंगे।

कभी-कभी थोड़े समय के लिए वह एक-आध चीज दे भी देती। कहती—ले तुझे दे रही हूं मगर बाद में उसे छीन भी लेती—मुझे लौटा दे।

देवू सारे समय खामोश बैठा रहता। उससे अच्छी बात कही जाती तब भी खामोश रहता, बुरी बात कही जाती तब भी। सत्यदासी और भी पांच साल तक जिंदा रही थी। देवू इस बीच दस-बारह बार आया होगा। आखिरी बार जब वह आया था तब वह चौदह-पंद्रह साल का रहा होगा। वह अपने गांव के स्कूल में कक्षा सात मे पढता था। सत्यदासी का निधन हो गया था, उसके श्राद्ध के लिए वह अपनी मा को लेकर कुछ रुपयों की सहायता लेने आया था।

हायर सेकेंडरी इम्तहान के वक्त उसकी मां की चिट्ठी आयी थी कि उसके पास देवू की फीस भरने के लिए रुपये नहीं हैं। रुपये न जमा करने पर देवू इम्तहान नहीं दे पाता। भवनाथ बाबू ने रुपये भेज दिये थे। पचास रुपये! उनकी पत्नी ने एतराज किया था, मगर भवनाथ बाबू ने कहा, 'जब चिट्ठी आयी है तो रुपये भेज ही दूं। जरा यह भी देखो, उसकी नानी नौकरानी का काम करती थी। उसके मां-बाप बेहद गरीब

है अगर उनका लड़का पढ़ लिखकर लायक बन जाए तो उसका कुछ पुण्य हम सबका भी मिलेगा वह हर जगह तुम्हारा एहसान मानेगा।'

पत्नी ने इसके बाद कुछ नहीं कहा। दीपा भी खुश हुई थी। और वह सीधा-सादा लड़का भी हैरान हुआ था। ओफ दादी तुम्हें क्या बताऊं कि वह कितना सीधा और डरपोक था। वह सारे समय मुंह बाये मुझे ही देखता रहता था।

दीपा उस वक्त नवीं पास करके दसवीं में गयी थी। उसके बाद फिर सत्यदासी के नाती की खबर किसी ने नहीं रखी।

भवनाथ बाबू की पत्नी माथा पीटकर रोने लगीं। छिः छिः छिः ! सत्यदासी के उसी नाती के साथ—ओह आखिरकार उसमें उसे क्या नजर आया ? उसे क्या मिल गया ? उसने भी एम॰ ए॰ तक पढ़ाई की है, दीपा ने भी की है। न वह कोई डॉक्टर-बेरिस्टर है, न कोई प्रेमचंद-रायचंद। तब ? क्या है वह ? रूप ? गुण ? क्या है? उसमें उसे कौन-सी सुंदरता नजर आयी ?

3

गाढ़े शहद जैसा रंग था देवप्रिय हालदार का। वह कम बोलता था, हरदम खामोश रहने वाला या कहा जाए बेहद अहंकारी था। वह लगभग छः फुट लम्बा था। देखने में हृष्ट-पुष्ट था। तीखी नाक थी। आंखें कुछ छोटी थीं लेकिन असाधारण रूप से तेज थी। सिर के बाल घने कड़े और सीधे खड़े रहते थे। सिर के बाल काफी छोटे कटवाने के कारण वे कटे धान के खूंटों की तरह खड़े रहते थे। यूनिवर्सिटी में वह औसत दर्जे का ही विद्यार्थी था, उससे ज्यादा कुछ नहीं।

....नहीं—दादू, वह खेलकूद में अर्जुन-कर्ण कुछ भी नहीं है न पढ़ाई-लिखाई में बुध-बृहस्पति। अभिनय-वभिनय में भी वह शिशिरकुमार, उत्तमकुमार यहां तक कि अधमकुमार भी नहीं है। गाने में भी वह पंकज मलिक, हेमंत मुखर्जी नहीं है। उसमें यह सब कोई प्रतिभा नहीं है। फिर भी वह मुझे क्यों अच्छा लगा, कह नहीं सकती। बस, वह मुझे अच्छा लग गया। यहां तक कि सत्यदासी के नाती होने के कारण भी वह मुझे अच्छा नहीं लगा था। क्योंकि तब तक मैं उसके बारे में कुछ नहीं जानती थी। मैंने उसे पहचाना भी नहीं था। देवू को मैं देवू के रूप में ही जानती थी, उसका पूरा नाम देवप्रिय हालदार मैंने नहीं सुना था।

....मुझे वह अच्छा लगा था।

....यूनिवर्सिटी में एक ऐसा लड़का पढ़ता था जो पेंट नहीं पहनता था, टी-शर्ट नहीं पहनता था। कोंछा मारकर धोती पहनता और शेक्सपियर कालर वाला पूरे हाथ का टेनिस शर्ट; पैरों में सैंडल के बजाय कपड़े के जूते पहनता, बालों में तेल लगाता, आमना-सामना होने पर वह चुपचाप बगल से निकल जाता। उसकी दोस्ती भी

काफी कम लडको से थी इसके बावजूद उसकी ओर मेरा ध्यान गया यूनिवर्सिटी में भर्ती होने के बाद जब मैंने उसे शमि के यहा देखा था तब उससे पूछा था 'यह बागडू-सा दिखने वाला लड़का कौन है ?'

शमि को तुम जानते हो दादू ! मैंने शमि को ही तुम्हें चिट्ठी देने भेजा था। उसी ने तुम्हें फोन किया था। वह घर के बारह पहुंचकर भी तुमसे भेंट करने का साहस नहीं जुटा पायी। उसने तुम्हारे कमरे में चिट्ठी डालकर घर वापस लौटकर तुम्हे फोन किया था। हालांकि तुम जानते ही हो कि शमि कितनी प्रोग्रेसिव है, अपने मग मे वह किसी की परवाह ही नहीं करती।

शमि ने मुझे बताया कि वह उसके बड़े भाई के साथ पढ़ता है। नाम है देवप्रिय हालदार। हमारे भतीजों को पढ़ाने आता है, क्या तुमने उसे किसी दिन देखा नहीं?'

भवनाथ बाबू ने दीपा का पता ढूंढ़ निकाला। उनके साथ वहां उनकी पत्नी और दीपा की मां शोभा भी गयीं। दीपा के साथ ही उनकी ये सब बातें हो रही थी।

दो कमरे का छोटा-सा फ्लैट था। इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट ने आम लोगों के रहने के लिए जो नये फ्लैट बनाये थे, मानिकतला नाले के इस तरफ के उन्हीं फ्लैटों में से वह एक फ्लैट था। इसी में उसने अपनी गृहस्थी संवार ली थी। सामान के नाम पर बस थोड़ी-सी चीजें थीं। दो सिंगल बेड तख्तपोश को एक-दूसरे से सटाकर उसने डबल बेड बना लिया था। बिस्तर नये थे। सस्ती लकड़ी की चार मेजें थीं। दो मेजो को जोड़कर उस पर प्लास्टिक का टेबल क्लॉथ बिछाकर खाने की मेज बना ली गयी थी। और एक मेज ड्रेसिंग टेबल थी। दीवार से सटाकर उस मेज को रखकर उस पर एक आईना और प्रसाधन सामग्री रखी थीं। एक मेज पर उनकी किताब-कापिया थी। घर में एक काम करने वाली नौकरानी थी। रसोई वह खुद ही पकाती थी। दीवाल पर उनकी कई तस्वीरें लगी थीं। देखकर साफ लगता था यह मामला काफी दिनों से चल रहा था। बीज धीरे-धीरे जमीन के नीचे से अंकुरित होकर, बड़ा होकर पुष्पित-पल्लवित हुआ था।

भवनाथ बाबू दीपान्विता की इस नयी गृहस्थी का रूप देखकर अवाक् या हतवाक् रह गये। इतने अभाव और दीनता के बीच दीपान्विता एक दिन भी बिता सकेगी, यह उन्होंने सोचा तक नहीं था।

भवनाथ बाबू ने जीवन में कम नहीं कमाया था। उन्होंने सरकारी कॉलेज में लम्बे समय तक पढ़ाया था। पूरे चालीस साल तक। चालीस साल पहले डेढ़ सौ रुपयों से उन्होंने शुरुआत की थी। इसके बाद उनकी तनख्वाह हजार से ऊपर हो गयी थी। इसके अलावा एक-दो छात्रों को भी वे पढ़ाते थे—राजा-महाराजाओं के।

इसके अलावा कुछ किताबें भी उन्होंने लिखी थीं वे बिकने वाली किताब थीं उन्होंने अपना मकान बना लिया था बाकी रुपये उन्होंने समझ बूझकर अच्छे शेयरों मे लगा दिये थे। आज भी किताबों और शेयरों से उन्हें आठ-नौ सौ रुपये मिल जाते थे। उनके घर में दीपा ही उन सभी का भरोसा और आशा थी। उसे उन्होंने विलासिनी नहीं बनाया था। दीपा के प्रसाधन की मेज पर कभी रूज-लिपस्टिक नजर नहीं आया था, लेकिन उसके कपड़े चाहे वे सफेद हों या रंगीन वे कभी गंदे या फीके नजर नहीं आते थे। वह इतिहास की छात्रा थी। लेकिन उसके कमरे में भवनाथ बाबू ने साहित्यिक किताबों का अच्छा खासा संग्रह सजा दिया था। दीपा को यामिनी राय, गोपाल घोष के चित्र पसंद थे। उन्होंने खुद वे चित्र खरीदकर दीपा के कमरे में लगा दिये थे। उसे अच्छे रेकार्ड खरीद दिये थे। उसके कमरे में एक सुंदर सिंगल पलंग पर बढ़िया बिस्तर बिछा रहता था। इसके अलावा एक सिंगापुरी बेंत का सोफा सेट भी था। अभी तक उसकी दादी अपने सामने उसे दोनों वक्त दूध पिलाती थीं। वह मजबूरी में छोटी बच्ची की तरह बाप रे-बाप रे, ग्रैनी तुम्हारे पांव पड़ती हूं, प्लीज प्लीज' करके उछलती-कूदती। कहती, 'प्लीज ग्रैनी माफ करो। मैं इतनी मोटी हो जाऊंगी। प्लीज !'

फिर भी वह बच नहीं पाती थी। उसकी दादी वैसे तो ठीक-ठाक थीं लेकिन बिगड़ने पर शामत आ जाती। फिर तो वे दूध का गिलास नाली में उड़ेलकर भी शांत नहीं होती थीं, गुस्से में वे दूध की पूरी कड़ाही ही उलट देती थीं। मुंह फुलाकर वे एक तरफ बैठ जातीं। उनसे किसी को कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती थी। कुछ देर बाद किसी बहाने से फर्श पर उनका सिर पटकना चालू हो जाता। वे दीपा की गृहस्थी को खुद देखने आयी थीं और बेहद चकित होकर यह सोच रही थीं कि इतनी तकलीफ में दीपा खुश कैसे है ? किस बात ने उसे भुला लिया ? किस आशा का फूल उसके मन में खिल गया ?

दीपा ने कहा, 'दादू, उसके रूप में मैंने एक शिष्ट और समर्थ व्यक्ति को महसूस किया है। मैं यह नहीं कह रही कि उसे मैं दुनिया का श्रेष्ठ पुरुष मानती हूं। इस तथ्य से मैं परिचित हूं।'

वह एक मामूली लड़का है। यूनिवर्सिटी में किसी रूप में भी लोकप्रिय नहीं था। उस तरह होना भी उसने नहीं चाहा था। फिर भी मुझे वह अच्छा लगा। मैं उसके प्यार में पड़ गयी।

हमारे उस प्यार में कोई चालू रोमांस नहीं था। शर्मिला के यहां मैंने उसे पहली बार देखा था। शर्मिला के बड़े भाई के साथ देवप्रिय पढ़ता था। उसके अभावों की बात तो तुम्हें बताने की जरूरत नहीं; वह तुम्हारे घर की सत्यदासी नौकरानी का नाती है। हायर सेकेन्डरी पास करने के बाद उसने इतिहास से आनर्स लेकर सेकेंड क्लास

भ पास किया था एम ए पढने की भी उसकी कोइ कल्पना नहा था बी ए पास करने के बाद वह बारासात में एक हायर सेकेंडरी स्कूल मे नौकरी करने लगा था साल-भर पूरे होने के पहले ही उसकी मां ने मरकर उसे मुक्ति दे दी। उसके बाप ने तुरंत दूसरी शादी कर ली। उसका एक छोटा भाई था, वह कक्षा आठ तक पढ़ने के बाद पॉलिटिकल लीडर बनने की ख्वाहिश में बहक गया, वह भी घर-बार का मोह त्यागकर निकल गया। देवप्रिय स्कूल की नौकरी छोड़कर एम. ए. पढ़ने कलकत्ता चला आया।

उसके बाप ने कहा था, 'मैं कानी-कौड़ी नहीं दूंगा। जो कुछ जमीन-जायदाद ह, वह भी तुम लोगों को नहीं मिलेगी। मैंने पढ़ा-लिखाकर लायक बना दिया है, अब खुद कमा-धमाकर खाओ।' उसने शमिता के भाई के साथ यूनिवर्सिटी में नाम लिखा लिया। वह रोज बारासात से आता-जाता था। सीधा-सादा, शर्मीले स्वभाव का देवव्रत शमिता के भाई रंजित का बड़ा अनुगत था। रंजित पढ़ने-लिखने में अच्छा था, इतिहास लेकर उसने प्रथम श्रेणी में बी. ए. पास किया था। लेकिन स्वभाव का वह बहुत चंचल था। ऐसा न होता तो वह स्टैंड कर सकता था। शांत, औसत बुद्धि वाले देवव्रत ने रंजित से उसकी नोट-बुक नकल करने के लिए मांगी थी। दोनों में परिचय का सूत्र यही हुआ। अनुगृहीत व्यक्ति के प्रति स्नेह हो ही जाता है। रंजित को भी उससे स्नेह हो गया था। इसके अलावा देवप्रिय में एक खूबी है, उसके हाथ की लिखावट बहुत अच्छी है। रंजित के नोट की वह नकल करता था, मगर दूसरा के नोट की भी नकल करके वह रंजित को देता था। स्कूल में नौकरी करके उसने थाड़े रुपये बचाये थे। उनके खर्च हो जाने के बाद उसे काफी दिक्कतों का सामना करना पड रहा था। उसकी कठिनाई का समाधान करने के लिए रंजित ने उसे अपने यहां अपने दो भतीजों को ट्यूशन पढ़ाने का काम दिलवा दिया। वह रोज शाम को उन्हे पढाकर बारासात लौट जाता।

हम लोग उस वक्त कॉलेज में पढ़ते थे। यूनिवर्सिटी पहुंचने में अभी दो साल की देर थी। मैं शमिता के यहां आया-जाया करती थी। लेकिन यकीन करो बाद, साल-भर तक वह मुझे नजर नहीं आया। शमिता को भी उसका आना पता नहीं चलता था। उसने कभी उसके बारे में मुझसे चर्चा भी नहीं की थी। उसने कभी उसके बारे में मुझसे चर्चा भी नहीं की थी। देवप्रिय ने कभी शमिता की ओर आंख उठाकर देखा भी नहीं। शमिता ने भी उसकी परवाह नहीं की।

सालभर बाद एक दिन यूनिवर्सिटी में यूनियन के किसी मामले में एक लम्बे धोती-कुर्ता के इस पहने युवक को रंजित के साथ देखकर मैं चौंकी। बालों में उसने खूब तेल लगा रखा था। मैंने शमि से पूछा, 'यह बेवकूफों जैसा नजर आने वाला कौन है रे ? तेरे भाई के साथ घूम रहा है।'

शमि बोली भैया के साथ पढता है भैया का चेला है नाम है देवप्रिय हालदार मेरे दोनों भतीजो को पढाता है उसे हमारे यहा देखा नहीं ?

मैने कहा 'नहीं तो तून कभी बताया नहीं

'नहीं बताया ? मुझ याद नहीं।'

'अच्छा यह वाकई ऐसा सीधा-सादा है या कोई स्टाइल है ?'

'मतलब ?'

'मतलब कि उसका अल्पभाषी होना स्टाइल है, या वह वाकई ऐसा है ?'

'वह वाकई ऐसा ही है।'

'ऐसा ही ? पैरों के कपड़े वाले जूते से लेकर टुइल शर्ट तक !'

'अब कसम खाकर तो यह बात कह नहीं सकती। लेकिन यह विनयी और कुछ शर्मीला भी है। थोड़ा अक्खड़ भी है। जिसे बुलडॉग टेनासिटी कहते हैं, कुछ उस प्रकार का, जैसा भैया ने मुझे बताया है। मैं ज्यादा बात नहीं करती, बस नमस्कार वगैरह तक ही सीमित है। मुझे वह बेहद अन-इंटरेस्टिंग लगता है।'

दो महीने बाद रजित के जन्मदिन पर उससे मेरा परिचय हुआ, निहायत मामूली परिचय। उसका नाम देवप्रिय हालदार, रंजित दा का दोस्त और मेरा नाम दीपान्विता चटर्जी, शमिता की दोस्त हूं—बस इतना ही परिचय हुआ, इससे ज्यादा नही।

वह सीधा-सादा व्यक्ति मुझे अच्छा ही लगा, लेकिन कोई राग-अनुराग पैदा करने वाली या लड़कियों को पागल बनाने वाली बात उसमें नहीं थी। उस वक्त मै क्षण-भर के लिए भी इस बात पर यकीन नहीं कर सकती थी कि मैं कभी उसके प्रति आकर्षित हो सकती हूं। इसके बावजूद मैंने एक दिन महसूस किया कि वह मुझे बेहद अच्छा लगने लगा है, इसका कारण क्या था पता नहीं, फिर भी वह मुझे अच्छा लगने लगा था। इम्तहान की तैयारी के कारण उसने ट्यूशनी छोड़ दी थी, शमि के यहां अब वह नहीं आता था। यूनिवर्सिटी भी नहीं जाता था। उसे बिना देखे मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। मुझ पर उदासी छा गयी। दादू, मैंने इस पर खूब सोचा है। जो कुछ निर्णय मैंने किया है, उसे सुनकर तुम्हें दुःख होगा, तुम सिहर उठोगे। मुझे इस रोमान्स का कोई अपराध बोध नहीं है। यह किसी घटनाचक्र के लेन-देन के बावत ऋणी मन का, कृतज्ञ मन का आत्मसमर्पण नहीं है; यह सिर्फ बॉयलॉजी है। मनुष्य की सभ्यता की दृष्टि से शायद शर्मनाक बात, लेकिन यथार्थ यही है। पुराने जमाने में स्वयंवर सभा में राजकुमारी से विवाहेच्छुक राजकुमार कतार में बैठे रहते थे, वह राजकुमारी हाथ में माला लेकर हर व्यक्ति के सामने खड़ी होकर उसे देखती, चारण का विवाह तय कराने वाला उस राजकुमार के गुणों का बखान करता। आखिरकार राजकुमारी अपनी पसंद के युवक के गले में वरमाला डाल देती। किसी

का देखकर अच्छा लगने की बात हर युग में रही है आगे भी रहेगी धन मान गुण यश प्रतिष्ठा सबका स्थान इसके बाद है

हृदय का मेल, मन का मेल तो बाद मे आता है, नजरों से अच्छा लगने की बात पहले आती है। उसके प्रति मेरे आकर्षण की बात मेरी समझ में तब आयी जब मैंने देवप्रिय को कई दिनों तक नहीं देखा।

अचानक एक दिन शमि ने मुझसे कहा, 'आज बड़ी गडबड़ हो गयी है रे दीपा। मुझे बहुत खराब लग रहा है।'

'क्या हुआ ?'

'आज सुबह देवप्रिय हमारे यहां आया था। इंद्रजित और अभिजित को पढ़ाने के एवज मे उसके सौ या अस्सी रुपये बकाया थे। उसने जरूरत पड़ने पर लेने के लिए ही उन रुपयों को हमारे यहां छोड़ रखा था। मगर उन रुपयों को भैया ने पिताजी से लेकर खर्च कर दिया। उसे यह बात नहीं मालूम थी। देवप्रिय सुबह जब आया था तब रंजित घर मे नहीं था। विवश होकर देवप्रिय ने एक स्लिप लिखकर इंद्रजित के हाथों पिताजी के पास भिजवा दिया। उसे रुपयों की सख्त जरूरत थी। मेरे पिताजी इन मामलों में बड़े टची हैं। वे मारे क्रोध के वहां आकर बोले, 'रुपये ? किस बात के रुपये ? अपने हिसाब के पाई-पाई पैसे तो तुम ले गये हो।' उस बेचारे के मुंह से निकल गया, 'जी नहीं, उसे मैंने बाद में लेने की सोचकर उस वक्त नहीं लिया था।' पिताजी बोले, 'नहीं, रंजित ने तुम्हें जरूर दे दिया होगा, मैंने खुद तुम्हें देने के लिए उसके हाथों में दिये थे, मुझे खूब याद है। उसने मुझसे कहा था, पिताजी, देवप्रिय को पैसे की सख्त जरूरत है। मैंने कहा, 'ठीक है, उसे जाकर दे दो। उसने तुम्हें दिया नहीं होगा, ऐसा हो ही नहीं सकता।' वह अचंभे में पड़ गया। उसके दो-तीन बार नासमझ की तरह जी-जी करते ही पिताजी ने आवेश में उसे खरी-खोटी सुना दी। इंद्रजित का रिजल्ट अच्छा नही हुआ था, इसलिए पिताजी ने कहा, 'रुपये तो तुमने बिना पढ़ाये ही ले लिये। ऊपर से एक बार रुपये पाने के बाद भी इस तरह दुबारा मांगने चले आये, गेटआउट ! गेटआउट !' बेचारा वहीं से सिर झुकाकर चला गया। बाद में भैया ने आकर मुझसे कहा, 'वाकई शमि, यह तो बड़े अन्याय की बात हो गयी। रुपये तो उसके बकाया हैं ही। मैंने उन्हें खर्च कर दिया है। मुझे उसे यह बात बता देनी चाहिए थी कि जरूरत पढ़ने पर रुपये मुझसे ले लेना, पिताजी के पास मत चले जाना, या उनसे मत मांग बैठना। मेरे भैया आज उससे मिलने बारामास जायेंगे। मुझे बहुत बुरा लग रहा है।'

....यह बात सुनकर उस दिन मुझे भी बहुत खराब लगा था। शमि के पिता या भैया का देवप्रिय के साथ दुर्व्यवहार या अन्याय किया जाना उतना नहीं खल

रहा था खल रहा था देवप्रिय की हालत के बारे म सोचकर मुझे सुनकर बहुत खराब लगा साथ ही साथ उस पर विचित्र किस्म का गुस्सा भी आया जिसमें उसके प्रति सहानुभूति ही मुख्य थी। एक सीधे-सादे आदमी को कैसा भुगतना पडा। वह इस तरह क्यों भुगतता है ? क्यों वह सिर झुका लेता है ? वह विरोध क्यों नहीं करता?

देवप्रिय ने हंसते हुए कहा था, 'मैं गुस्सा नहीं कर पाता। यह मुझसे नही होता। मुझे अच्छा नहीं लगता।'

शमि ने उसके बारे में जिस दिन हमें यह सब बताया उस वक्त हम दोनों यूनिवर्सिटी में क्लास से निकलकर लाइब्रेरी जा रहे थे। इसके बाद लाइब्रेरी से निकलकर शाम को शमि के यहां न जाकर मैं सीधे घर लौट रही थी। मेरी बस श्याम बाजार पंचमुहानी के मोड़ से बाग बाजार स्ट्रीट जंक्शन पार करके एक जगह रुक गयी थी। तभी मैंने देखा कि थोड़ी दूर से एक आदमी लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चला आ रहा है। उसका सिर एकदम तना हुआ था और उसकी चाल में जरा भी थकान नहीं थी। मुझे रानी रोड तक जाना था लेकिन उसे देखकर मैंने अपने मन मे उस क्षण एक विचित्र आकर्षण अनुभव किया, जिसकी उपेक्षा करके बस मैं बैठे रहना मेरे लिए असंभव हो गया। मैं बस से उतर गयी। और जरा ऊंचे स्वर में उसे पुकारा 'देवप्रिय बाबू ! देवप्रिय बाबू !'

वह चौंककर रुक गया और इधर-उधर देखने लगा। मैंने फिर पुकारा। इस बार उसकी नजरें मुझसे मिलीं। मैंने उसी क्षण सड़क के इस तरफ खड़े होकर महसूस किया कि सड़क के दूसरी तरफ खड़े देवप्रिय बाबू के चेहरे पर सहसा किसी ने टार्च की रोशनी फेंकी हो। मैं भी शायद शर्म से लाल हो गयी थी।

4

दीपा कहते-कहते रुक गयी। इसके बाद हंसते हुए बोली, 'यही शायद सनातन स्थायी एक्सप्रेशन है दादू ! एक-दूसरे को देखकर खुश हो जाना, शर्मा जाना। तुम लोग जो बुजुर्ग लोग हो, तुम लोगों से प्रेमी या प्रेम की खबर जरूर छिपायी जाती है लेकिन आज की मतलब सन् 1960 के बाद की किसी कुमारी युवती के लिए रास्ते के लोगों के सामने अपने प्रेमी को देखकर शर्माने का कोई सवाल नहीं पैदा होता।

खैर। हम दोनों ने ही अपने को संभाल लिया। बल्कि उस वक्त मैं थोडा चकित भी हुई थी क्योंकि मैं उसे प्यार करती थी यह तो उस वक्त भी बहुत स्पष्ट नही था। बल्कि मैं खुद चकित होकर सोच रही थी कि उसे बुला तो लिया, मगर बुलाया क्यों ? उससे बात क्या करूं यह भी नहीं सूझ रहा था। लेकिन उसके चेहरे

पर क्षण-भर के लिए जो रोशनी नजर आयी थी उसने मुझे बेहद पुलक से भर दिया था। उसने आकर बड़ी इज्जत से पूछा, 'आप मुझसे कुछ कहना चाहती हैं ? मैंने कहा, 'हां !' लेकिन कहूं क्या ? अचानक मेरे मुंह से निकला, 'आप अब कैसे हैं ?'

'कैसा हूं !' उसने बड़े शांत भाव से पूछा।

'शमि के पिताजी द्वारा किया गया अपमान आपने खामोशी से बर्दाश्त क्यों कर लिया ? जरा भी विरोध नहीं किया। छिः छिः ?'

वह सिर झुकाकर हंसा।

मैंने कहा, 'उनसे पैसे अब आप मत लीजियेगा।'

'बिल्कुल नहीं लूंगा। इसका फैसला मैं कर चुका हूं।'

'रंजित आपके यहां बारासात गया हुआ है।'

'मुझसे उसकी यहीं भेंट हो चुकी है। उसे वहां जाना नहीं पड़ा। वह मुझे रुपये दे रहा था, मैंने नहीं लिये। रंजित के पिता ने अपने बच्चों के रिजल्ट के बारे में जिस तरह मुझसे कहा, उसके बाद रुपये लेने का कोई मतलब नहीं है। लेना उचित भी नहीं होगा। मेरी रंजित से थोड़ी कहा-सुनी भी हो गयी।'

'इधर कहां गये थे ?'

'जरा काम से गया था।'

'क्या रुपये के लिए ? माफ कीजिए, यह पूछने का मुझे अधिकार तो नहीं है।'

'नहीं, आप कुछ भी पूछ सकती हैं। सब कुछ आपके अधिकार में है।'

मेरे मन में कुछ उमड़ने-घुमड़ने लगा। दिल में एक विचित्र किस्म का बोझ-सा महसूस हुआ। कुछ खटका, 'इसके कहने का आशय क्या है ?'

शायद यही सुनना चाहती थी—उसने कहा 'ठीक है, मुझे भी नाराजगी जाहिर करनी ही पड़ेगी। दिखावे की नहीं। उचित ही।'

उसने कहा, 'आपके अधिकार की परिधि में मेरा जीवन और जगत् समाया हुआ है।'

उसके बातों के लहजे से मैं नाराज नहीं हो पायी, उसे चकित होकर देखती रही। उसने कहा, 'आप लोगों का मैं काफी आभारी हूं।'

'हम लोगों का ? ऐसा क्या किया ?'

'आप सबके ढेरों उपकार हैं। जब मैंने हायर सेकेंडरी का इम्तहान दिया था तब आपके नाना ने मेरी फीस भरी थी। इसके पहले हर साल आपके नाना मेरी किताब-कापी खरीदने के पैसे देते थे। कमीज हाफपैंट जूते खरीद देते। तभी से केड्स शू पहनने की आदत पड़ गयी है मेरी नानी आपके यहां की नोकरानी थी

थे सत्यदासी का नाती है। आपको उनकी याद है ?

....दादू मुझे उसी दिन उसे घर लाकर तुमसे मिला देना उचित होता। शायद तब उससे हमारी अंतरंगता प्रेम में परिणत नहीं होती। अंतरंगता को एक संकोचपूर्ण गोपनीयता की आड़ में न छिपाने से बीज से फिर प्रेम का अंकुर नहीं फूटता। दादू, शायद मैं भी उसे मन ही मन चाहने लगी थी इसीलिए उसे तुम्हारे यहां न ले जाकर मैंने उससे कहा था, 'आप कल वेलेगेछे के परेशनाथ के बगीचे में आइयेगा। बारह बजे। मैं वहां मिलूंगी। आपको कितने रुपये चाहिए, बता दीजिए ले आऊंगी। आप मुझसे रुपये लेने में कतई संकोच मत कीजिये। अगर संकोच हो तो बाद में नौकरी मिल जाने के बाद चुका दीजियेगा।

दूसरे दिन बेलेगेछे के परेशनाथ के बगीचे में मैंने उसे डेढ़ सौ रुपये दिये थे। इसके बाद हम दोनों काफी हाउस जाकर दिन-भर साथ रहकर शाम को लौटे थे। उस वक्त हम दोनों एक-दूसरे के लिए 'आप' से 'तुम' हो गये थे। देवप्रिय ने अपनी जेब से एक फोटो निकालकर मुझे दिखाकर कहा था, 'बचपन मे तुम्हारे यहां से मेंने यह तस्वीर चुरायी थी। इसे मैं हमेशा जेब में रखे रहता हूं।' यह कहकर वह हसने लगा था। मैं शर्म से लाल हो गयी। प्रेम जैसे कि उस तस्वीर में ही छिपा हुआ था। वह तस्वीर तब की थी जब मैं सात-आठ साल की थी।

....दूसरे दिन शमि ने बड़ी चिंता से कहा, 'कल बारासात में उनके यहा बैठकर दिनभर इंतजार करती रही, मगर उनसे भेंट नहीं हुई। न जाने कहां चले गये थे।'

....दादू कुल मिलाकर कहानी यह है। तुम लोगों को मेरी बातों से तकलीफ हुई होगी, दादू तुम्हें तो ज्यादा नहीं, मगर मां तथा दादी को ज्यादा हुई होगी, मुझे पता है कि सबके कलेजे पर चोट लगी होगी। तुम भी ऊपर से भले ही हंसो लेकिन दु ख तुम्हें भी हुआ है।'

....दादी और मां जात-धर्म मानती हैं, शायद उसकी आर्थिक हैसियत का भी ख्याल होगा। सत्यदासी—मेरी दासी सास ही इस घटनाक्रम में मुख्य हैं। तुम लोगों के लिए यह बड़ी अहम् बात है। लेकिन हम लोगों के लिए यह कोई समस्या की बात नहीं है दादू।

....प्रेम तो हमेशा से ही अस्तित्व में रहा है। राजकुमारी का प्रेम चरवाहे से हो जाता है। चरवाहा अपनी शक्ति से राजा बनता है। वह राजकुमारी का दिल जीत लेता है। हार जाने पर वह जान दे देता है। राजकुमारी वियोग में रोती है या तो वह भी जान दे देती है या फिर आंसू पोंछकर, माथे का सिंदूर पोंछकर दुबारा शादी करके प्रेम पर्व की समाप्ति कर देती है। जो बिना शादी किये प्रेम के लिए अपनी जान देता है, वही जीतता है।

लेकिन आज का जमाना दूसरा है वक्त भी अलग है इस जमाने में अब किसी चीज की बाधा नहीं है दादू . अब सत्यदासी का नाती होने के कारण उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वह ब्राह्मण नहीं है इस बात से भी उसकी पात्रता में कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। उससे मैं प्रेम करती हू इसीलिए मैंने शादी की है।

....मैंने तो चिट्ठी में लिखा था दादू—तुम सबको दुःखी करके मुझे भी कम दु ख नही हुआ। आपकी जबान से भी यही बात कहती हूं। दुःख मैंने तुम सबको हमेशा ही पहुंचाया है, लेकिन अन्याय, पाप या अपराध मैंने जरा भी नहीं किया है। इसके लिए मैं तुम लोगों का तिरस्कार क्यों सहूं ?'

भवनाथ बाबू स्तब्ध बैठे थे। थोड़ी दूर बैठी हुई शोभा—दीपा की मां रो रही थीं। भवनाथ बाबू की पत्नी पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी हुई थीं।

दीपा ने फिर कहा, 'दादी कहेंगी—ब्राह्मण की लड़की होकर—सीता, सावित्री के देश की कन्या होकर—देवप्रिय से शादी करके मैंने महापाप किया है। मगर दादी, बुरा मत मानना ब्राह्मण युग की बात अब ध्यान से निकाल देनी पड़ेगी। जात-पांत भी अब कोई नहीं मानता। तुम्हें पता है मैं भी नहीं मानती। तुम लोगो ने भी मुझे इसी तरह बड़ा किया है। लेकिन देखा जाए तो एक दृष्टि से मैंने सावित्री जैसा ही काम किया है, जिसे मैंने मन ही मन प्यार किया, दूसरी जात का होने के कारण उसे छोड़कर मैंने किसी और से शादी नहीं की। सावित्री ने जब मन ही मन सत्यवान का वरण करके अपने पिता से आकर कहा था कि सत्यवान को उसने मन ही मन अपना पति मान लिया है, उस वक्त नारद वहां मौजूद थे, उन्होंने ठीक अड़ंगा लगाते हुए कहा था, 'ऐसा कैसे हो सकता है, सावित्री सत्यवान तो राजपाट खोया हुआ राजपुत्र है।' सावित्री ने कहा था, 'फिर भी वह मेरा पति है। वे लोग वनवासी हैं, फिर भी वह मेरा पति है।' आखिरकार नारद बोले, 'सबसे खराब बात यह है कि सत्यवान की आयु कम है।' सावित्री ने कहा, 'फिर भी वही मेरा पति है।'

....मैं भी यही कहती हूं दादी, भले ही मैंने रजिस्ट्री से शादी की है। चाहे तो इसे अपराध कह सकती हो, पर अपराध ही क्या है, अगर प्रेम झूठा साबित हो, यदि जीवन असहनीय हो जाए तब मैं तलाक भी ले सकती हूं; लेकिन अब तक जो कुछ मैने किया है, उसमें अन्याय जरा भी नहीं है। बिल्कुल नहीं है।'

....मैं तुम लोगों से कुछ मांग भी नहीं रही हू।

....न तुम लोगों की जमीन, न तुम लोगों की जायदाद। अगर संपर्क नहीं रखना चाहोगे तो उसके लिए भी नहीं कहूंगी। मैंने उसके साथ घर बसा लिया है, अपनी गृहस्थी को लेकर मैं खुश रहूंगी।'

भवनाथ बाबू ने अब मुंह खोला, बोले, 'चलो जी, अब यहां से चलें। शोभा बेटी, जरा सोचकर देखो। मैं जरा भी बाधा नहीं दूंगा। अगर तुम चाहो-- ।'

शोभा मुंह से कुछ बोल नहीं पायी, लेकिन इन्कार में जोर से गर्दन हिलाने लगी--नहीं, नहीं, नहीं।

भवनाथ बाबू बोले, 'तब तो बेटी यह बात भूल जाओ कि दीपा नाम की तुम्हारी कोई थी। आओ चलें।'

वे लोग चले गये।

दीपा खामोश बैठी रही। उसके अंदर जो अंतर्मंथन चल रहा था, लग रहा था उसके दबाव से उसकी पसलियां टूट जायेंगी। लेकिन नहीं--हर्गिज नहीं-- ।

'दीपा !'

दीपा ने मुड़कर देखा। देवप्रिय कमरे में आ गया था। वे लोग जब तक यहां थे वह तब तक बाहर ही था। सड़क पर घूम रहा था। दीपा ने ही उससे कहा था, 'तुम यहां मत रहना। तुम रहोगे तो वे लोग खासकर दादी अगर बुरा-भला कहें, तो मुझसे बर्दाश्त नहीं होगा।' तुम बाहर ही रहना।'

'वे लोग चले गये ?'

दीपा से जवाब देते नहीं बना। वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई, उसके साथ ही उसके आंसुओं का बांध टूट पड़ा।

'दीपा !'

दीपा ने देवप्रिय को बांहों से जकड़कर उसके सीने में अपना सिर रखकर कहा, 'तुम मेरे अतीत को विस्मृत करा दो। अपने प्रेम से सब कुछ विस्मृत करा दो।'

देवप्रिय ने उसे जोर से अपनी बांहों में भींच लिया।

5

भवनाथ बाबू ने अपनी पुत्रवधू से कहा था, 'दीपा नाम की कोई थी, इसे बहू तुम भूल जाओ।' भवनाथ बाबू की पत्नी को भी यह कहने की जरूरत थी, भवनाथ बाबू के यह ध्यान में नहीं आया था। उनकी पत्नी ने उस दिन भी दीपा के यहां से निकलकर टैक्सी में सवार होते वक्त कहा था, 'अरी दीपा, मैं प्रार्थना करती हूं कि तू मर जा !

विचित्र व्यक्ति थीं न, लेकिन सिर्फ वही क्यों विचित्र थीं, वे सभी लोग जो भवनाथ बाबू की पत्नी की तरह पहले जमाने के अपरिपक्व लोग थे, दुर्बल लोग थे, वे ही शायद इसी तरह के विचित्र लोग हो सकते थे। अपनी आखिरी बीमारी के दिनों

मे वे दीपा के लिए बेचैन हो गयी दीपा ओ दीपा तुझे मे एक बार देखना चाहती हू दीपा

दो साल बाद !

भवनाथ बाबू कलकत्ता छोड़कर काशी चले गये थे। वे वहीं रहने लगे थे। कलकत्ता से अपना संपर्क उन्होंने खत्म कर लिया था। अपना मकान बेचकर सारा रुपया बैंक में रखकर पति-पत्नी अपने जीवन के बाकी दिन वहीं बिता रहे थे।

पुत्रवधु शोभा अब उनके साथ नहीं रहती थी। वह अब एक गुरु का सहारा लेकर उन्हीं के साथ जगह-जगह घूमती रहती थी। उस घटना के कुछ दिन बाद ही—लगभग तीन महीने बाद—शोभा अपने गहने और पति के लाइफ इंश्योरेंस के रुपये, जो उसके नाम बैंक में फिक्सड डिपोजिट थे, उन्हें लेकर एक दिन घर से चली गयी। भवनाथ बाबू ने सोचा था शायद दीपा के आकर्षण के कारण शोभा वहीं चली गयी होगी। लेकिन नहीं। उन्होंने पता लगाकर देखा कि शोभा वहां नहीं थी।

शोभा—दीपा की मां की उम्र पैंतीस-छत्तीस की थी। वह देखने में सुंदर थी। दीपा से कहीं ज्यादा सुंदर। दीपा आधुनिक जमाने की लड़की थी, थोड़ी कड़क और तेज—पुरुषों की तरह। शोभा कोमल और संकोची थी। इसलिए भवनाथ बाबू उसके लिए चिंतित हो गये। लेकिन बाद में उन्हें खबर मिली कि शोभा अपने मायके चली गयी थी। वहां उस वक्त उनके संन्यासी गुरु आये थे। उनसे दीक्षा लेकर अब वे गुरु के साथ ही घूमती थी। गुरु का बहुत बड़ा आश्रम था। वे पूरे देश में घूमते रहते थे। शोभा वहां प्रसन्न थी। उसने अतीत को भुला दिया था। निंदा करने वाले तरह-तरह की बातें करते थे। उसे परवाह नहीं थी।

सब कुछ रहने के बाद भवनाथ बाबू अपनी पत्नी को लेकर काशी में रहने लगे थे। अचानक भवनाथ बाबू की पत्नी ने खाट पकड़ ली। उन्हें अपनी पुत्रवधू को देखने की ख्वाहिश नहीं हुई, मगर दीपा को देखने के लिए वे तड़पने लगीं।

'दीपा को, एक बार दीपा को देखना चाहती हूं। उसे बुला दो।'

भवनाथ बाबू से इन्कार करते नहीं बना। उनका हृदय भी प्रतिदिन तूफान से लाये हुए बालू की तरह मरुभूमि बनता जा रहा था। निरंतर तृष्णा से उनका मन व्याकुल रहता था। पत्नी की उस कातर इच्छा की ध्वनि जैसे वहां प्रतिध्वनित होने लगी। उन्होंने दीपा के पते पर तार भेज दिया। साथ ही दीपा जिस कॉलेज में पढ़ाती थी, वहां भी टेलिग्राम किया। इसके अलावा जिन छात्रों को वे बेटों की तरह मानते थे और जो शिक्षा विभाग में काम करते थे, उन्हें भी चिट्ठी लिखी उनमें दीपा के नाम चिट्ठी भी रख दी। उन्हें लिखा—मेरी पौत्री दीपा—दीपान्विता जो अब समझदार हो गयी है वह हम लोगों की इच्छा के विरुद्ध शादी करके अलग गृहस्थी बसाकर हमसे अपना

रिश्ता तोड चुका है मेरी पत्नी इस वक्त मृत्युशय्या पर है किसी तरह दीपा का पता लगाकर उसे यहा भेज दो मेरी पत्नी की सासे इतनी तकलीफ मे भी सिफ उसी के लिए अटकी हुई है

आखिरकार दीपा आयी।

उस दिन अपराह्न बेला थी। एक टैक्सी आकर खड़ी हुई, जिसमें से दीपा उतरी। टैक्सी का हॉर्न सुनकर भवनाथ बाबू खिड़की पर आकर खड़े हो गये।

हां दीपा ही तो थी। उन्होंने उसी क्षण एक नजर में दीपा को पहचान लिया। दीपा कुछ लम्बी लग रही थी। लम्बी हुई थी या दुबली हो गयी थी ? वे ठीक समझ नही पाये।

वह अकेली ही आयी थी। साथ में देवप्रिय नहीं था। वह खुद नहीं आया था या दीपा ने साथ आने से मना किया था ? दीपा ने ही नहीं आने दिया होगा। यही हुआ होगा। मगर यह बड़े अन्याय की बात है ?

भवनाथ बाबू झटपट दरवाजा खोलकर बाहर निकल आये। उन्होंने अपने नोकर रामभरोसे को आवाज लगायी—भरोसे बाहर से सामान ले आओ।

दीपा ने नजदीक आकर कहा, 'दादू !'

उसकी ठुड्डी के नीचे हाथ लगाकर उसका चेहरा ऊपर करके भवनाथ बाबू उसे देखने लगे। उनके होंठ थरथर कांप रहे थे। आंखें आंसुओं से भर गयीं।

दीपा की आंखें भी भर आयीं; लेकिन उसने मुस्कराने की कोशिश की।

दोनों ने ही अपने आंसू पोंछे। दीपा बोली, 'दादी कैसी हैं ?'

'तेरे लिए ही अब तक जिंदा है। बुढ़ापे की बीमारी है। ऐसे तो कुछ नही है मगर कब क्या हो जाए कोई कह नहीं सकता। लेकिन—तू देवप्रिय को साथ क्यो नही लायी ? अकेली क्यों आयी दीपा ?'

'क्या ?'

'उसे साथ क्यों नहीं लायी ? तूने क्या यह सोचा कि हमने तुझे बुलाया है, उसे नहीं ? मैंने तो लिखा था—'

'हां, दादू !'

'तो फिर तूने क्या सोचा—कुछ और—'

'दादू !' कुछ कहते हुए रुक गयी।

'तू उसे टेलीग्राम कर दे।'

'वह—वह तो—'

दीपा का गला भर आया।

'दीपा !'

अपना गला झाड़कर दीपा बोली 'दादू, वह तो अब इस दुनिया म नहीं रहा

'दी-पा भवनाथ बाबू के गले से चीख निकल गयी वे थरथर करके कापने लगे। दीपा उनसे लिपटकर बोली—दादू ! दादू !

'दीपा !' भवनाथ बाबू सिसककर रोने लगे। आंसुओं के कारण उन्हें कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। उन्होंने अपने आंसुओं के पर्दे को भेद करके दीपा को देखने की कोशिश की। हां वाकई। दीपा के शरीर पर सफेद-काले रंग को छोड़कर और दूसरा रंग नहीं था। काला भी थोड़ा-सा, ज्यादा सफेद ही था। वह सफेद रंग, जैसे आंसुओं के कुहासे में और सफेद नजर आ रहा था। उसके हाथ में चूड़ी और गले में एक पतला सोने का हार था। शायद इतने से ही किसी को विधवा नहीं कहा जा सकता था—लेनिक विधवा होने के बाद इससे ज्यादा गहने कोई नहीं पहनता, न उसके कपड़ों का इससे अलग कोई रंग ही होता है।

वह लम्बी नहीं, दुबली—कमजोर हो गयी थी। दीपान्विता म्लान हो गयी थी। दीपा विधवा हो गयी थी।

'दादू !'

'दीपा !'

'तुम दादी से मत कहना। मैं उसे नहीं बताना चाहती।'

'दीपा, यह कब की बात है ?'

'आठ महीने होने को आये दादू !'

'तूने खबर तक नहीं भेजी।'

'हां, खबर नहीं भेजी।'

'हम लोगों पर नाराज थी। तुझे लगता था—'

तुझे अभिमान हुआ था। वह भी अकारण। लेकिन उसे खत्म नहीं कर पायी थी। लेकिन तुम्हारे अभिशाप से ऐसा हुआ, यह मैं सोच भी नहीं सकती। यह तो एबसर्ड है।' दीपा के चेहरे पर फीकी मुस्कान थी, 'उसकी अचानक मौत हो गयी। वह इंटरव्यू देने दिल्ली गया था। मैं भी साथ गयी थी। वहां हम लोग खूब घूमे-फिरे। अचानक एक दिन उसका हार्टफेल हो गया।'

भवनाथ बाबू स्तब्ध हो गये।

दीपा भी खामोश थी। वह उदास नजरों से सामने देख रही थी। भीतर स भवनाथ बाबू की पत्नी की आवाज आयी—दीपा ! दीपा !

दीपा जैसे चौंककर जाग उठी। गहरी सांस लेकर बोली, 'दादू चलो, दादी बुला रही हैं।'

साथ चलते हुए वह बोली, 'रंजित से मुझे मां की खबर मिली। उसने कहा—बहुत खराब बात उसने कही दादू ! मतलब बहुत खराब ढंग से उसने कहा। बीस्ट

ब्रूट मुझसे आकर कहने लगा मैं तुम्हें प्यार करता हूं।' मैं बोली 'मगर मैं नहीं करती जिसे मैंने प्यार किया था उसे ही आज भी प्यार करती हूं, रंजित मैं मानती हूं कि इस दुनिया में धर्म, ईश्वर—सब झूठ है, लेकिन प्यार झूठा नहीं होता। अगर एक बार किसी से प्यार हो जाए तो उसे छोड़कर दूसरे से प्यार नहीं किया जा सकता। मैंने देवप्रिय से ऐसा ही प्यार किया था। उसे इसी तरह सारी जिंदगी चाहती रहूंगी। उसे भुला नहीं सकती। कम से कम इस वक्त तो यही लगता है।' फिर वह थोड़ा मुस्कराकर बोली, 'रंजित ने मुझे व्यंग्य करते हुए मेरी मां के बारे में बताया। कहा, 'ठीक है, अंत में अपनी मां की तरह ही किसी बाबाजी की चेली बन जाना।' उसे मैंने भगा दिया।'

उसकी आवाज रूखी हो गयी थी। उसने कहा, 'दादू ! प्रेम से बड़ी, किसी को चाहने से बड़ी चीज और कोई नहीं होती। यही मधुरतम है। मिलन में मधुर, विरह में मधुर—हंसी में, रुदन में—। जरा ठहरो दादू, मैं खुद को संभाल लूं। दादी से छिपाना होगा न ! आह !'

रूपवती विहंगिनी

ईश्वर तुम्हीं कहो। हे ईश्वर !' सुचन्द्रा ने आखिरीबार पूछा। भोर होने वाली थी। शेष होती रात का आखिरी लग्न। जिसे ठीक भोर भी नहीं कहा जा सकता। चार बजने को थे। अंधेरा छंटना शुरू ही हुआ था मगर आसमान का रंग अभी भी काला था, तारे चमक रहे थे। सिर्फ दो-चार तारों की चमक ही फीकी पड़ी थी। पूर्व दिशा का शुकतारा अभी भी खूब चमक रहा था। चिड़ियों ने जागकर अभी तक चहचहाना नहीं शुरू किया था। आसमान में चांद नजर नहीं आ रहा था। शुक्ल पक्ष चल रहा था। पृथ्वी पर इस समय आश्चर्यजनक निस्तब्धता छायी हुई थी।

उस स्तब्धता को तोड़ते हुए पूरी जेल जाग उठी।

जेलखाने के दफ्तर में बिजली जल रही थी। किसी मृदु कंठ की आवाज आ रही थी। जेलखाने में एक के बाद एक दो फाटक थे। एक अंदर की ओर था, दूसरा बाहर की ओर। भीतर की ओर लोहे की छड़ों के फाटक के दोनों पल्लों में से एक पल्ले में छोटा-सा दरवाजा बना हुआ था। वह खुल गया था। दफ्तर से एक संतरी उस फाटक से होकर अंदर चला गया। दो भारी मजबूत बूटों के शब्द धीरे-धीरे अंदर की ओर दूर चले गये।

सभी वार्डों में ताला लगा था। उनके बाहर संतरी पहरे पर थे। यह रोज का काम था। लेकिन आज का काम जैसे बाकी दिनों से कुछ अलग था, नया था या उसमें कुछ अस्वाभाविकता थी। वार्ड के अंदर कैदियों के नींद से जगने की आवाज भी आ रही थी। अमूमन इतने तड़के वे भी नहीं जागते। रात की आखिरी पहर की नींद में डूबे होते हैं। उनकी भी नींद आज टूट गयी थी। उनके सोये हुए मन को जैसे किसी ने कोंचकर उन्हें जगा दिया था।

आज एक व्यक्ति को फांसी लगने वाली थी। कल शाम को ही यह बात न जाने कैसे एक-दूसरे के कानों में फुसफुसाहट के साथ सभी को पता चल गयी थी।

इन दिनों फांसी बहुत कम लगती थी। खून-हत्याएं तो जरा भी कम नहीं हुई थी लेकिन फांसी कम हो गयी थी।

न्यायाधीश अब मृत्युदंड के अधिकार का बहुत ज्यादा उपयोग नहीं करते थे।

जूरी लोग संदेह का लाभ दे देते थे फिर भी बीच-बीच में जूरियों के सामने लाचारी आ जाती थी। जज के हाथ सख्त हो जाते थे। फांसी का हुक्म हो जाता था। ऐसे वक्त एक बेचैनी गर्मी-बरसात की उमस की तरह या जाड़े की आखिरी रात की बर्फीली हवा की तरह पूरी जेल में छा जाती थी। फांसी की तारीख जेल अधिकारी गोपन ही रखते थे, गोपनीय रखना ही नियम था। लेकिन न जाने कैसे बड़े विचित्र तरीके से सारी जेल को पहले दिन शाम को ही पता चल जाता था कि अगले दिन तड़के उस खूनी आसामी को फांसी लगने वाली है। उस दिन तड़के ही सभी की नींद टूट जाती थी। तालाबंद वार्ड के अदर वे लोग सांस बंद करके बैठे रहते थे। बाहर संतरी लोग रोज के मुताबिक ही घूमते हुए पहरा देते रहते थे, लेकिन उनकी चाल से ही उन्हें पता चल जाता था कि यह रोज वाली चाल नहीं है। उनके लेफ्ट-राइट मे रोज की कड़क नहीं है, कुछ सुस्ती है। उनके बूट कंकड़ियों पर कभी-कभी फिसलते या बहकते हुए लगते थे। आज की उत्तेजना और बेचैनी के कारण उन्हे जैसे सांस लेने में तकलीफ हो रही थी। फांसी आज एक जवान औरत को होने वाली थी। वह सुंदर और कमसिन थी। शायद ! क्योंकि उसे उन्होंने अपनी आंखों से नहीं देखा था। वह जनाना फाटक—फीमेल वार्ड में रहती थी। हत्या करने के बावजूद 'ए' श्रेणी की कैदी थी। वह एक अलग कमरे में रहती थी। पूरे मुकदमे की कार्रवाई के दौरान उसने अच्छे वस्त्र पहन रखे थे। उसके चाल-चलन के बारे में कैदियों में सैकड़ा तरह के किस्से प्रचलित थे। किसी ने भी उसे खुद नहीं देखा था, इसके बावजूद उनकी धारणा बन गयी थी कि वह खूबसूरत और जवान दोनों ही है।

वह युवती सुंदर थी या जवान थी, इसको लेकर कोई मतभेद नहीं था। उसे बिना देखे ही सभी ने इस बात को मान लिया था। रूप-यौवन के साथ उसकी ख्याति ने मिलकर उसे कहानी की नायिका की तरह लालसामयी बना दिया था। लखहीरा कहानी की नायिका की तरह। लखहीरा की तरह यह लड़की भी वेश्या थी। उसकी चाहत का मूल कारण शायद यही रहा होगा। वह एक प्रसिद्ध गायिका और नर्तकी थी। इसीलिए उसके प्रति सबकी चाहत बेकाबू हो गयी थी। वह दिनोंदिन बढ़ती ही गयी थी। इसके अलावा उस युवती का नाम भी लखहीरा नाम की तरह ही बेहद चटकदार और मीठा था।

उसका नाम विहंगिनी था। सिर्फ विहंगिनी ही नहीं, बाद में उसके चाहने वालो ने उसके नाम के साथ एक विशेषण भी लगा दिया था। उसे वे रूपवती विहंगिनी कहने लगे थे। सुंदर रूप और मधुर कंठ—दोनों ने ही एक स्त्री के शरीर में आकर डेरा जमा लिया था। शायद इसीलिए उसके प्रति लोगों की चाहत हद से बाहर चली गयी थी। मैना, तोता कोयल, पपीहा वगैरह जितने भी सुरीले पक्षी हैं, उन सभी ने जैसे मिलकर एक स्त्री का रूप धारण कर लिया था। इसलिए उसमें प्राणों का इतना

उल्लास था उल्लास जैसे उफना उठता था उफनान में वादी का अर्थ निहित रहता है लेकिन उसमें भी विहंगिनी की लालसा के आकर्षण म रत्ती भर कमी नहीं हुई। उस जमाने के बालकों की कहानी के एक पात्र मधु दादा के अक्षय भंडार की तरह कभी खत्म करने पर भी खत्म नहीं होता था। विहंगिनी की चाल म मयूरी के नृत्य का छंद नजर आता था। (यहां पर मोर कहना ही उचित होगा लेकिन लोग उसे मयूरी कहना ज्यादा पसंद करते थे।) उसकी वाणी में कोयल की मिठास थी, 'बहू कथा कहो' पक्षी की तान थी, उसकी वेशभूषा और शृंगार युक्त उसके चेहरे पर हलूदमणि पक्षी जैसा ही अपरूप नजर आता था। विहंगिनी सेन के रेकार्ड के एक चर्चित गीत के भाव कुछ इस प्रकार हैं—विश्व सम्मोहित हो जाता है तुम्हारे खुले बालों से, सखी तुम जूड़ा मत बांधो।' उसी तरह विहंगिनी के भी पीठ पर शैम्पू किये रेशम के समान काले बाल फैले रहते थे। यहां पर किसी चिड़िया की उपमा सटीक नहीं बैठ रही है। बस एक युवती का ही चेहरा याद आता है। एक अपरूप लालसामयी युवती का, जिसका नाम रूपवती विहंगिनी था।

इसी विहंगिनी को आज फांसी दी जाने वाली थी।

विहंगिनी ने अपने गुरुजी का खून किया था। उस्तरे से उनकी कंठनली काट डाली थी। उस दृश्य की कल्पना से पूरा शरीर सिहर उठता है। अंतरात्मा जैसे भय से सिकुड़ जाती है। इसके बावजूद विहंगिनी के प्रति आकर्षण में जरा भी कमी नहीं आती।

आकर्षण में कमी की कौन कहे, आकर्षण बढ़ता ही जाता है। गुरुजी एक संन्यासी थे। उनकी उम्र कम थी। लेकिन अब पहले वाले संन्यासी कहां रहे। पहले शादी के लिए दिखनहारों को लड़कियां जब दिखायी जाती थीं, तब हल्की रोशनी में वे खूबसूरत लगती थीं, यह सच है कि आज भी वे वैसी ही रोशनी में खूबसूरत लगेंगी, लेकिन अब लड़की पसंद आने वाली वैसी रोशनी का समय खत्म हो गया है। इस देश में लड़कियां कभी गुरुप्रसादी पाने की हकदार थीं। संन्यासियों ने तो मठ खोलकर महंतगिरी का साम्राज्य विस्तार कर लिया था। वह जमाना बीत गया—लेकिन ये लोग अभी भी हैं। वह भी इसी तरह एक साथ ही संन्यासी और गुरु थे। उस पर युवा भी थे। इसलिए इस जवान गुरु के संपर्क के प्रति किसी की सहानुभूति नहीं थी, बल्कि लोग संदेह ही करते थे।

विहंगिनी के घर में गुरुजी आये थे—वहीं टिके भी थे। वे विहंगिनी को पापमुक्त करने आये थे। उन्होंने उसे स्वर्ग जाने की आध्यात्मिक सीढ़ी के पास लेकर उस पर चढ़ा देना चाहा था। गुरुजी के उपदेशों को विहंगिनी ने सुना था। लोगों ने यहीं तक देखा था। इसके बाद क्या हुआ, हकीकत में क्या घटा, इसे विहंगिनी के अलावा कोई नहीं जानता

विहंगिनी ने कहा था मैंने बदला ले लिया है

बदला कैसा बदला

वह मैं नहीं बता सकती

उन्होंने क्या किया था

'नहीं बताऊंगी। बताने से भी कोई नहीं समझेगा।'

'भले ही कोई न समझे, तुम बताओ तो।'

'नहीं।'

'नहीं बताने पर तुम्हें फांसी की सजा हो जायेगी।'

'हो जाए, मरने पर मुझे कोई शिकायत नहीं है।'

'उन्होंने तुम पर अत्याचार करने की कोशिश की थी ?'

'नहीं।'

'तब उन्होंने क्या किया था ?'

'क्या किया था ? कुछ भी नहीं।'

'दरअसल हुआ क्या था, बताओ।'

'मैं गुरुजी के आश्रम में गयी थी। शाम से कीर्तन शुरू हुआ। इसके बाद उन्होंने आंखें बंद कर लीं। फिर खर्राटे लेने लगे। मुझे बड़ा गुस्सा आया। गुस्सा काफी दिनों से जमा था। जीवन में जितना गुस्सा संचित था, सब एक साथ फूट पड़ा। मैं दबे कदमों से जाकर नजदीक तिपाई पर रखा उस्तरा उठा लायी। गुरु चित्त लेटे हुए थे। मैंने अपना हाथ सख्त करके वह उस्तरा झटके से उनकी कंठनली पर दबाकर उन्हें पूरी ताकत से अपने करीब खींच लायी। पिचकारी की तरह खून निकलने लगा। गुरुजी ने चौंककर एक बार आंख खोलकर देखा—इसके बाद ही—खेल खत्म। उनके छटपटाने से खून की धार और तेजी से बहने लगी। इसके बाद उनकी पुतलियां उलट गयीं।'

'इसके बाद ?'

'कुछ नहीं। मुझे बहुत खुशी हुई।'

'तुम्हें खुशी हुई ?'

'हां।'

'क्यों ? खुशी क्यों हुई ?'

'मुझे लगा कि मैंने बदला ले लिया है।'

'किस चीज का बदला ? उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?'

'कुछ भी नहीं। बल्कि उन्होंने मुझे मंत्र दीक्षा दी थी। वे क्या करते ? मगर उन्हें देखते ही मेरे तन-बदन में आग लग जाती। बदला लेने की इच्छा करती।'

हा 'ह तो समझ गया मगर बदला किस बात का उन्होंने तुम्हारा बिगाड़ा क्या था

यह नहीं पता मगर इच्छा होती थी

'अच्छा, क्या तुम्हें अकेली पाकर उन्होंने तुम्हें—'

विहंगिनी बात पूरी होने के पहले ही बोली, 'नहीं, नहीं वे उस तरह के नहीं थे।'

इसके बाद वह बड़बड़ाते हुए बोली, 'दुर ! दुर !

उसने दोनों 'दुर' शब्द को एक साथ ही जोड़कर उसका उच्चारण किया, जिसके कारण शब्दों में निहित उपेक्षा की व्यजना बहुत साफ प्रतिध्वनित हुई थी। यहा पर किसी तरह के अविश्वास की गुंजाइश नहीं थी, न कोई सवाल ही पेदा होता था।

निचली अदालत से लेकर हाईकोर्ट तक उसने यही कहा। यह खास कलकत्ता के आभिजात्य देह व्यवसाय के मुहल्ले की घटना थी। हाईकोर्ट तक यह मुकदमा चला था। न्यायाधीश और जूरी के सदस्य सभी प्रख्यात व्यक्ति थे। इसके अलावा तदवीर के लिए विहंगिनी के रूप-गुण से मुग्ध होने वाले व्यक्तियों की कमी नहीं थी। उन लोगों ने खुद आगे आकर बचाव की कोशिश की थी। ऐसे लोगों में बैरिस्टर और एडवोकेट भी थे। उन लोगों ने अदालत में उसकी ओर से वकालत की थी।

सभी की कोशिश थी कि वह अपना मुंह खोल दे।

'बस इतना कह दीजिए कि मैंने जो भी किया, आत्मरक्षा के लिए किया।'

विहंगिनी ने पूछा, 'अगर मुझसे पूछा जाए कि उन्होंने क्या किया था, तब मै क्या कहूंगी ?'

'आप खामोश रहियेगा। कुछ मत कहियेगा। आंखें नीची रखियेगा और एक बात—'मैंने बदला लिया' यह बात मत कहियेगा।'

'नहीं कहूं ?'

'नहीं। क्योंकि इसका कोई अर्थ नहीं है। आपका कहना है मैंने बदला लिया है। मगर किस बात का बदला ?' आप ही कहिए, किस बात का बदला ?'

विहंगिनी काफी सोचकर बोली, 'यह मुझे भी पता नहीं।'

'अगर पता नहीं तो कहने की जरूरत क्या है ?'

'उन्हें देखते ही मैं तिलमिलाने लगती थी।'

'यह तो वही बात हुई। आप तिलमिलाने क्यों लगती थीं ? इसका कारण क्या था ?'

विहंगिनी खामोश हो गयी। मन ही मन काफी सोचने के बाद भी वह कोई कारण नहीं ढूंढ पायी।

बैरिस्टर ने सलाह दी थी ये दो बात दरअसल ये दोनो एक ही बात है आप मत कहियेगा

'मगर यह जो सवाल है—आपने ऐसा क्यों किया ? मैं इसका क्या जवाब दूगी।'

'मैंने यह काम नहीं किया है बस इतना ही कहिए। यही कहने की कोशिश कीजिए। अगर यह कहना आपके लिए बहुत मुश्किल हो तो कहियेगा, मैंने आत्मरक्षा के लिए ऐसा किया। इसके बाद बिल्कुल खामोश रहियेगा। बस !'

विहंगिनी ने बैरिस्टर की सलाह के मुताबिक कहने और चलने की पूरी कोशिश की। लेकिन किसी तरह तालमेल बिठाकर झूठ को सच करने की बात तो दूर रही—सच को जरा भी छिपाने की उसने कोशिश नहीं की। उसने पहले जेसा कहा था ठीक वैसे ही उन्हें दोहरा दिया। कहने के बाद एक विचित्र उदास दृष्टि से विस्मय से अभिभूत होकर वह देखने लगी। शायद वह खुद से भी यही सवाल पूछ रही थी—बदला किस बात का ? उसे इतना गुस्सा भी किस बात का था ?

बैरिस्टर ने इसके बाद उसकी दिमागी हालत ठीक न होने का मुद्दा बनाया था। लेकिन चिकित्सा विज्ञान की तेज धार वाली संधानी पद्धति के चलते यह बहाना टिक नहीं पाया। वह व्यर्थ हो गया। इसके बाद जूरी न्यायाधीश किसी को भी उसके प्रति करुणा करने का कोई कारण नहीं मिला। इस मामले के अभियोग के विवरण मे यह घटना इतनी भयावह कत्ल की थी कि आजीवन कारावास का दंड भी उनके लिए बहुत कम लगा। एक रूपवती, गुणवती और चर्चित युवती को मृत्यु न होन तक फांसी पर लटकाये रखने का दंडादेश देने के अलावा उनके पास और कोई उपाय नही था। कुछ और सोचने की कल्पना मन में आते ही उसने भी डरते हुए चेहरा छिपा लिया था।

वह गुणी कलावंत युवती उस वक्त पिशाचिनी महसूस हुई थी।

जज ने अपने आदेश में लिखा था—इस मामले के तमाम पहलुओं पर विचार करने के बाद एकमात्र दंड—मृत्युदण्ड के अलावा और कोई दंड देने की बात सोचने पर भी विवेक धिक्कारता है। उसकी आड़ में करुणामय ईश्वर की भृकुटि भी नजर आती है।

'इस सारे मामले में एक विरल जीवन सत्य उद्‌घाटित हुआ है। विचारक का दायित्व इस मामले में बेहद कठिन और निर्मम है। अभियुक्त एक महिला है। जो जननी होती है, जो जाया होती है। नारी जीवन और नारी मन को लेकर सारी दुनिया के समाज ने उसकी मूर्ति जाया और जननी रूपिणी नारी के रूप मे ही गढ़ने की कोशिश की है। उसका आदर करना चाहता है, उसकी पूजा करना

चाहता है एवं सबने किया भी है लेकिन दुर्भाग्यवश नारी में सिर्फ जाया और जननी का ही निवास नहीं होता उसमें छद्मवेश में शायद उसके अनजाने ही एक बेहद क्रूर पिशाचिनी भी रहती है सबसे ज्यादा आशंका और खेद की बात यह है कि पिशाचिनी का पिशाचत्व उसके अंतर में वास करता है। बाहर से उसका कोई भी लक्षण या चिह्न नजर नहीं आता। बाहर से वह नारी ही रहती है। नारी स्वाभाविक रूप से ही अपने रूप से पुरुष को आकर्षित करती है। उसका रूप-यौवन इस क्षेत्र में अचूक साबित होता है। यह औरत तो बेहद सुंदर और यौवन प्रांत पर होने के बावजूद युवती है—उस पर शृंगार में निपुण भी। देह व्यवसाय इसका पेशा है। आक्षेप की बात यह कि यह औरत संगीत और अभिनय में निपुण है। जिसके कारण यह मनुष्य और समाज के लिए बेहद खतरनाक बन गयी है। इसकी तुलना उस नाग या नागिन से की जा सकती है, जो देखने में तो फूलों के हार की तरह लगती है लेकिन जिसमें भयंकर विष भरा होता है। पुरुष मोहग्रस्त होकर जैसे ही उसे गले में डालता है, नागिनी अपने स्वभाववश उसे डस लेती है। समाज और सृष्टि की भलाई के लिए ऐसे लोगों को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं होता।'

सबसे अंत में उन्होंने ईश्वर की दुहाई दी थी। दुहाई नहीं—कहा था, 'सारी घटनाएं एकदम स्पष्ट हैं एवं प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित भी हुई हैं। अभियुक्त अस्वीकार करने की कोशिश करते हुए भी सत्य को छिपा नहीं पाया। इसलिए— ।'

छह महीने से ज्यादा वक्त उसे जेल में बीते थे। पांच महीने विचाराधीन कैदी के रूप में—विचार करने में सिर्फ तीन दिन लगे थे। ज्यादा गवाह थे नहीं; जरूरत भी नहीं हुई थी—सब कुछ उसी ने बयान कर दिया था। अपने रोजमर्रे के जीवन में वह प्रगल्भा अभिनय निपुणा एवं तीखे वचन बोलने वाली विलासिनी थी, मगर अदालत में एक अनोखी विह्वलता के कारण सारा लिखाया-पढ़ाया भूल गयी।

इन छह महीनों में उसके बारे में न जाने कितनी बातें इस विशाल जेलखाने के कई हजार कैदियों के बीच प्रचारित होती रहीं। हर रोज कोई न कोई नयी बात होती रहती।

'कल रात सुना है रो रही थी।'

'रो रही थी ?'

'हां, फूट-फूटकर रो रही थी।'

जो सुनता वही उदास हो जाता। 'रो क्यों रही थी ? शायद उसने खून नहीं किया हो।'

'नहीं नहीं खून उसी ने किया था जनाना फाटक के सिपाही ने बताया कि उसके मेट ने उसे यह बात बतायी थी वह जुबेदा है न

ओह शायद पछतावा हो रहा होगा

शायद

किसी दिन अफवाह फैलती कि वह रात भर गाती रही थी ओह—कसम से क्या गाती है। अरे बाप रे ! कलेजा चीर देती है।

'श्यामा संगीत या कीर्तन ?'

'अरे छोड़ ! भला यह सब गायेगी ?' .

'फिर ?'

'सुना, गजल गा रही थी, वह भी खास उर्दू में। सईयां—बने—। खिड़की के पास बैठकर—आसमान में चांद को देखते हुए—वह अपनी सुध-बुध खोकर गा रही थी।'

सुनने वाले ने बड़ी समझदारी से गर्दन हिलाकर कहा, 'बहुत बड़ी गायिका है वह। खानदानी बाईजी इसे ही कहते हैं। नहीं समझे ! खून के इल्जाम में कोई अभियुक्त जिसके सिर पर फांसी की रस्सी लटक रही हो, अगर उसे आसमान के चांद की ओर देखकर गजल गाने की इच्छा होने लगे तो उसे क्या कहोगे ? मायाविनी-मोहिनी जिसे कहते हैं, यह वही है।'

'हां, नहीं तो इतनी आसानी से भला कोई किसी जवान मर्द के गले पर उस्तरा चला सकती है ?'

'तकदीर में लिखा हो तो सांप के डंसने से मौत हो सकती है या बाघ से मुठभेड़ हो सकती है। 'साप का लिखन बाघ का देखन।' और यहां तो मोहिनी मंतर के छलावे से आकर्षित करके जान ले ली।'

'हां, बिना मंतर-वंतर जाने भला कैसे हो सकता है।'

'हां, इसे इन्सान नहीं कर सकता। मायाविनी या राक्षसी ही ऐसा कर सकती है।'

'तुम देखना, उसे फांसी की सजा नहीं हो सकती। जज-जूरी सभी को वह मंत्र पढ़कर भूलावे में डाल देगी। मैं कहे देता हूं।'

पूरे जेलखाने में ही उन दिनों हर वार्ड में हजारों मायाविनी डाईन की कहानियां लोग सुनाते रहते। जिन्हे सुनकर आजीवन कैद की सजा पाये कैदी भी सिहर उठते थे।

अतीत के उन डाकिनियों की कहानियां याद आ जाती हैं। किसी पूर्णिमा की रात को आसमान में शोर करते हुए कोई काली-सी चीज तीर-वेग से उड़ी चली जा रही थी। एक ओझा ने अपने मंत्रबल से उसे आसमान से जमीन पर उतार लिया। देखा गया वह एक जड़ समेत ताजा उखाड़ा हुआ बरगद का पेड़ था। उसके दो शाखाओं की संधि पर एक खूबसूरत औरत बैठी हुई थी, जो एकदम नंगी थी। उसके

पूरे अग पर कपड का एक छोटा-सा टुकड़ा या कोइ सूत तक नहीं था गुलाब की तरह उसका रग था, उसकी देह मक्खन की तरह मुलायम थी और उसके लम्बे काले बाल पीठ पर फैले हुए थे। बालों में तेल नहीं पड़ा था। काले बादलों जैसे रूखे काले बालों से अपनी पीठ ढककर वह दूसरी ओर मुंह किये बैठी हुई थी। जमीन पर आते ही उसने दोनों हाथों से अपना मुंह छिपा लिया। शर्म से ! इतने मर्दो के सामने वह एकदम नंगी जो थी। सुनने वाले विस्मय से मुंह बाये आंखें फाड़कर सुन रहे थे।

कहानी के अंत में उस मायाविनी ने विचित्र तरीके से—उस ओझा के शरीर की पूरी खाल को अदृश्य हाथों से बड़ी क्रूरता से खींच लिया। फिर वह खुले बालो वाली नंगी डाकिनी, उस पेड़ पर सवार होकर मंत्र पढ़कर उस पेड़ को आसमान मे ले जाकर स्वेच्छा विहार के पथ पर न जाने कहां चली गयी।

'ए' क्लास के कैदियों के वार्ड में अति शिक्षित अंग्रेजी शिक्षा पाने वाले सरकारी कागजों में हेराफेरी करके दंडित होने वाले साहब के कानों में भी गजल गाने वाली बात पहुंची। वह भी चिंतित हो गया। उसने भी सोचा—वाकई, ऐसी औरतें क्या नही कर सकतीं।—Woman can do anything. A-n-y thing.

उसे इतिहास की बातें याद आने लगीं।

अनारकली के चारों तरफ दीवारें चुनवाकर उसे मार डाला गया था। फर्मी के साथ भी ऐसा ही हुआ था। कमर तक जमीन में गाड़कर शिकारी कुत्तो से नुचवाये जाने का वर्णन मिलता है। जेल के सभी कैदियों की इस बारे में एक ही राय थी।

लेकिन उसके दूसरे दिन जेल में फिर खबर फैलती कि वह रात-भर घुटने मोडकर अपने हाथों को जोड़कर प्रार्थना करती रही थी। प्रार्थना के अंत में उसने बड़े आर्तस्वर में मां कहकर पुकारा था। वह पुकार जिन लोगों ने सुनी थी सभी का दिल तडप उठा था।

सुनने वालों की आह निकल जाती।

वह आह जैसे पूरे जेलखाने में गूंजने लगती।

एक दिन जेल गेट पर एक डकैती के सजायाफ्ता कैदी के चालान के बाद एक वार्ड के मेट ने आकर कहा कि उस औरत के रूखे बालों से भीनी-भीनी खुशबू आती है। ठीक उसी वक्त वह औरत भी सुनवायी के लिए हाईकोर्ट जा रही थी। तभी मेट के नथुनों में उसके बालों की खुशबू आयी थी। मेट ने कहा—अपूर्व थी वह गंध। उस दिन पूरी जेल उस अपूर्व गंध में डूबी रही।

वह युवती उस वक्त भी अंडर ट्रायल मुजरिम थी। उसे 'ए' क्लास मिला था। इसमें दिक्कत नहीं आयी थी। उसका विहंगिनी नाम ही काफी था। नाटकों के रग

उड़े पोस्टरों में ढूंढने पर आज भी रूपवती विहंगिनी का नाम ढूंढे से मिल जायेगा उसके गाये गानों के रेकार्ड भी बाजार में मिलते थे उन रिकार्डों में उसका नाम लिखा था—सुचन्द्रादेवी उर्फ विहंगिनी। उनमें कई रेकार्ड ऐसे थे जिनमें गाने के बाद वह अपना नाम कहती थी—मैं रूपवती विहंगिनी हूं। नहाने वाले साबुनों और सिर के बालों के तेलों में भी उसकी तस्वीर और नाम दोनों ही कई सालों तक बतौर विज्ञापन छपते रहे थे।

विहंगिनी ने ऐसी नृशंसता से खून किया था, उन्हें इस पर यकीन करने की इच्छा नहीं होती थी। स्पष्ट रूप से भले ही न कहे प्रकारांतर से विहंगिनी ने यह बात स्वीकार कर ली थी। अस्वीकार करने की सारी कोशिश उनके प्रचंड सवालों की बोछारों के आगे कच्ची दीवार की तरह बैठ गयी थी। ऐसे लोग भी कहते थे कि—हकीकत होते हुए भी यह टेम्परेरी इन्सैनिटी है। अथवा—।'

अथवा क्या—वे समझ नहीं पाते थे।

आज भी उनमें से कई लोग जेल गेट पर आने वाले थे। उसका शव लेने के लिए।

कुछ दिन पहले भी उसके दो दोस्त आकर मिल गये थे। वे विशिष्ट व्यक्ति थे। उन्होंने उससे पूछा था, 'तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बताओ।'

वे लोग विहंगिनी से आंखें उठाकर बात नहीं कर पाये थे। उनकी नजरें नीची थीं। विहंगिनी भी कुछ विचित्र थी। वह बोली थी, 'मुझे एक बढ़िया सेंट भिजवा देना। सुना है फांसी के दिन तड़के नहाना पड़ता है। पहनने के लिए नये कपड़े मिलते हैं। बाहर के कपड़े नहीं, जेल के। जो भी दें। नहाने के बाद मैं इत्र लगाऊंगी। हां, और एक शीशी शैम्पू भी देना।'

'और कुछ ?' उस व्यक्ति ने एक गहरी सांस लेकर पूछा।

जवाब में विहंगिनी ने भौंहें सिकोड़कर कहा था, 'और कुछ ?'

'और क्या ?'

और क्या चाहिए था उसे वह समझ नहीं पायी। ढूंढ़ते हुए वह जैसे कहीं खो गयी। वह एक खामोश रंगहीन, शायद स्थान काल हीन किसी जगह पर अथवा किसी सागर के अनंत विस्तार के सामने आकर खुद को भुला बैठी थी।

थोड़ी देर के मौन के बाद उसके दोस्त ने उसे पुकारा, 'सुचन्द्रा !'

विहंगिनी उस युवती के स्टेज का नाम था। उसका वास्तविक नाम सुचन्द्रा था। विहंगिनी नाम उसके एक अनजाने प्रशंसक ने दिया था। एक बार डाक से उसके पास एक चिट्ठी आयी थी। वह चिट्ठी कविता में लिखी थी। उसमें लिखा था—

न तुम फूल हो, न तारा हो, तुम तो सखि एक इन्सान हो—
तुम्हारे अंगों में स्वर्णिम माधुरी है, तुम्हारे कंठ में

बजती है सोने की सितार और चांदी की घंटियों का स्वर
तुम हो सखि स्वर्ण विहंगिनी तुम पथ भूलकर
मृत्युलोक में स्वर्ग सुख की कामना में आ गया, वापस नहीं लौटी फिर

उस कविता में और भी बहुत कुछ लिखा था। वह लम्बी भी काफी थी। उसे पढ़कर थियेटर के दूसरे अभिनेता-अभिनेत्रियों ने मजाक भी किया था। थियेटर के मालिकान भी हंसे थे। इसके बाद ही विज्ञापनों में उन्होंने विहंगिनी नाम चालू कर दिया। उन लोगों ने पूरे कलकत्ता के बड़े-बड़े भवनों की दीवारों पर डिमाई कागज के आधे हिस्से के आकार का पोस्टर संटवा दिया। इसके बाद से उसका सुचन्द्रा नाम ही भुला दिया गया। वह विहंगिनी हो गयी।

खैर अब ये बातें रहने दी जाएं।

मृत्यु विहंगिनी के सिर पर अदृश्यलोक के बाज की तरह मंडरा रही थी। शायद इसीलिए उसकी सचेतनता ने उसे इतना अनमना कर दिया था या कहना चाहिए कि उसे किसी गहरे सागर के विस्तार के सामने खड़ा कर दिया था।

उसने अनमनेपन से उसे लौटाने के लिए ही उसके दोस्त ने उसे पुकारा था—सुचन्द्रा !

विहंगिनी चौंककर (अब उसे विहंगिनी ही कहूंगा) बोली, 'आं !'

'कुछ और कहो। कुछ और लाना है ?'

'कुछ और चाहिए ?'

'नहीं, कुछ नहीं। वह बातों के बीच से ही जैसे वहां से भाग जाना चाहती थी। वह जेल के अंदर, कंडेम्ड सेल में चली जाना चाहती थी।

अब वह 'ए' क्लास के वार्ड में नहीं रहती थी। अब उसे कंडेम्ड सेल में रखा जाता था। जाते-जाते वह रुककर बोली थी—नहीं, और कुछ नहीं—'

जो ऑफिसर मुलाकातियों की बातों को सुनने के लिए कमरे में बैठे थे उन्होंने कहा था, 'अभी समय खत्म नहीं हुआ है।'

वह बोली थी, 'बस हो गया।'

सेट-शैम्पू, नहाने का पानी, कैदियों के नये कपड़े—सब उसे मिल गये थे। कमरे में बिजली की बत्ती जल रही थी। विहंगिनी को जगा दिया गया था। हालांकि इसकी जरूरत नहीं थी। वह रात-भर जगी ही हुई थी। उसे शाम को ही फांसी के बारे में पता चल गया था।

'कल भोर में ही—'

तभी से विहंगिनी सोच में डूबी हुई थी। वही एक सवाल, जो उससे बार-बार पूछा गया था। अपने सिखाये जवाब को हड़बड़ी में उस तरह न कहकर वह कह

बठा था हा मने ही उसे हा मरे अदर एक विचित्र किस्म का आक्रोश रहता था। मैंने उसका बदला लिया है। लेकिन कैसा आक्रोश, यह उसे खुद पता नहीं था। उसने ऐसा क्या किया था ?'

नहीं, वे तो किसी व्यभिचारी व्यक्ति की तरह—। ऐसा आचरण तो उन्होंने कभी किया ही नही—उनकी दृष्टि में—। नहीं। उनकी ऐसी दृष्टि तो उसे कभी नजर नहीं आयी। उसने भी ऐसा कभी महसूस नहीं किया। फिर—? क्यों ?

जब भी वह यह सब सोचती थी उसके दिल से एक गहरी सांस निकल पडती थी—ठीक इसी जगह—उस निरुत्तर शून्यता के सामने।

आज शाम को उसने गहरी सांस ही नहीं ली, बेहद थकान और बेहद उद्वेग से उसने मन ही मन भगवान् को भी याद किया था। वह कभी भगवान् को याद नही करती थी। कम से कम इस बारे में तो नहीं करती थी। भगवान् को वह विपत्ति से रक्षा के लिए या आकांक्षापूर्ण करने की प्रार्थना सुनने के लिए पुकारती थी। उसका फैसला जिस दिन होना था, उसके पहले वह भगवान् को रोज पुकारती थी। चितपुर के जितने देवी-देवता थे उसने सभी को पुकारा था। उसने बाग बाजार के मदन मोहन को याद किया, अन्नपूर्णा घाट की काली को, शनि-सत्यनारायण की भी मनौती मानी थी। अक्सर ही वह भगवान् को अपनी रक्षा के लिए पुकारती रहती थी। अलग से वह मनौती नहीं मान पायी थी। क्योंकि भगवान् नाम की कोई चीज तो होती नही। आह छिः ! यह बात याद आते ही उसे याद आया—कि यह बात भी उसे इसी आदमी ने बतायी थी। जिसका उसने—। इसके साथ ही साथ उसके मुंह से—आह छिः छि शब्द अपने आप ही निकल गया।

पता नहीं किस कुघड़ी में इस आदमी के साथ उसकी मुलाकात हुई थी। वह अमूमन ऐसे गुरुओं के दर्शनों को कभी जाती नहीं थी। गुरु, संन्यासी, धार्मिक व्यक्ति और मास्टर—एक खास तरह का मास्टर—इनके नाम से उसे चिढ़ होती। देवस्थान के पंडा आते, घर में पुरोहित आते, वे आशीर्वाद देकर दो-दस रुपये ले जाते, पुरोहित पूजा कराकर दक्षिणा लेकर चला जाता। ऐसे लोग अलग थे। लेकिन उन लोगों को जो प्रभु बनकर सामने चरण करके बैठ जाते और बड़ी-बड़ी बातें करते, ऐसे लोगों को वह सह नहीं पाती थी। ऐसे लोगों के चरणों का न वह स्पर्श कर पाती थी, न उनके अमृत बचनों को सुन पाती थी। गुरु के चबाये पान को हाथ फैलाकर लेकर अपने मुंह में रखकर उस हाथ को अपने बालों में फेर भी नहीं पाती थी। हालांकि उसे पहले ही दिन वहां यह नजारा दिखायी पड़ा था।

यह देखते ही वह सिहरकर बोली थी—अरे सर्वनाश !

गुरुजी के मुंह का चबाया पान, न जाने उनके दांतों में पायरिया या कोई और रोग हो ? उसकी सहेली आशा ने बड़े मजे से हाथ फैलाकर उस पान को लेकर उससे

कहा था, 'लो। पूरा नही, आधा ले लो।

वह घृणा से अपने शरीर को पीछे करके बोली, 'नहीं।'

'नहीं लोगी ?'

'इसे तू खायेगी ?'

आशा ने जवाब नहीं दिया था, वह चकित होकर उसे देखने लगी थी। इसके बाद उस पान को मुंह में डालकर उसने अपने सिर पर हाथ फेर लिया था। विहंगिनी के मुंह से निकला—अरे सर्वनाश !

वे दोनों गुरुजी के सामने ही बैठी थीं। तभी तो आशा को उनके श्रीमुख से हाथ फैलाकर उच्छिष्ट प्राप्त करने का मौका मिला था। गुरु के कानों में उनकी बाते गयी थीं। उन्होंने हंसते हुए कहा, 'हां, यह बात तुम उन्हें समझाओ। मैं उन्हें कितना मना करता हूं। मैं भी तुम्हीं लोगों जैसा हूं। उससे ज्याद कुछ नहीं। सत्य सिर्फ ईश्वर है। परम सत्य। मेरा जूठा पान खाकर कोई कल्याण नहीं होगा। कल्याण तो दूर की बात है, अकल्याण नहीं होगा, यह बात भी कोई कह नहीं सकता। लेकिन यह जिम्मेदारी तुम लोगों की है, मेरी नहीं। समझा न ? तुम्हारी क्या राय है ?' यह कहकर वे हसने लगे।

पुराने जमाने के कोई परमहंस देव और आज के जमाने के एक आधुनिक अग्रेजी दां लीला धारी—जैसे ये दो व्यक्तित्व आपस में मिल गये हों। गुरुजी के चेहरे पर कांति थी। सिर्फ कांति ही नहीं, वे ताकतवर भी थे। पुष्ट देह, गोरा रंग, बड़ी-बड़ी भूरी आंखें। उनकी दाढ़ी-मूंछ नहीं थीं लेकिन बाल उनके लम्बे थे। वे करीने से सवरे रहते थे। इसके बावजूद उनका चबाया हुआ जूठा पान खाने की बात सोचकर उसका पूरा शरीर घिना उठा।

टुकड़ा-टुकड़ा बातें उसे याद पड़ रही थीं। शाम से ही चल रही कानाफूसी हवा मे व्याप्त गंध की तरह या सर्दी-गर्मी के स्पर्श की तरह उसे सचेत कर रही थी। मगर उन बातों का कोई टुकड़ा हवा में तैरता हुआ उस तक नहीं आया। क्योंकि सब कुछ बेहद खोमोशी से हो रहा था।

जनाना वार्ड के मेट अकारण ही उसके सामने से चहलकदमी करते हुए गुजरे। उनकी नजरों में जैसे कोई संकेत था। लेकिन सचेतन न रहने पर उस संकेत को भला समझा जा सकता है ?

इसके बाद संतरी।

उसे याद आया, सुबह जेलर और सुपर साहब आये थे। उन्होंने उससे बातें भी की थीं।'

पूछा था, 'तुम्हें किसी चीज की दिक्कत तो नहीं है ?'

उसने कहा था नहीं

दिक्कत तो नहा थी फासी के हुक्म के बाद भी उसे ए क्लास की सुविधाए मिल रही थी अचानक आकर उससे यह पूछने पर उसने सोचा था सुपर साहब इसी बहान स उसे आकर देख गये, उससे बाते कर गये. शाम को उसे लगा कि वाकई आज लोग उसे कुछ ज्यादा ही देख रहे हैं। और—।'

और अन्य दिनों की तरह आज उनकी नजरें भी बदली हुई लग रही हैं, ऐसा क्यो ?

फांसी के हुक्म की वह घड़ी कितनी भयानक होती है। कुछ क्षणों के लिए उसकी जो हालत हो गयी थी, अब उसे ठीक से याद नहीं। इसके बाद फांसी का हुक्म हो जाने के बाद से मन भी कैसा बदलता जा रहा है। जैसे भीतर का आवेग खत्म होता जा रहा है। बीच-बीच में उसे डर भी लगता है। वह अचानक घबराकर चौंक पड़ती है। फांसी की बात याद आते ही उसके चौंकने के साथ ही जैसे देह को भी कोई आकर हिला जाता है। इसके बाद वह बेहद विह्वल हो जाती है। फिर वह एक गहरी सांस लेती है। इसके बाद वह चेतनाहीन-सी पड़ी रहती है। उसके दिल में जैसे कोई सुबक-सुबककर रोती रहती है। मां के मृत संतान के शोक के रुदन की तरह। इस रुदन में जमाने से सहानुभूति की आशा नहीं थी—बल्कि भीतर ही भीतर कही लज्जा भी होती है। फिर अचानक रोता हुआ मन चुप हो जाता है। वह जैसे थककर सो जाता है। मन नहीं सोता, रुदन सो जाता है। इसके बाद सब गड्ड-मड्ड हो जाता है।

मन की ऐसी गड्ड-मड्ड हालत कुछ देर तक बनी रही। किसी चिंता को पकड़कर भी मन एक जगह थिर नहीं बैठ पा रहा था। वह जिस किसी चिंता को ही पकड़ने की कोशिश कर रही थी, वही जैसे टूटकर गिर जाती थी या फिर हाथ से फिसल जाती थी।

अचानक संतरी से आंखें मिलते ही उसने अचानक स्प्रिंग के खिलौने की तरह गर्दन समेत अपना सिर हिलाकर इशारे से पूछा, 'क्या बात है ?'

संतरी कुछ कह नहीं पाया। उसने किसी तरह अपनी थूक गटकी।

उसने फिर इशारे से गर्दन हिलाकर पूछा, 'फांसी लगेगी ?' उसका चेहरा भी हिला था।

संतरी ने इस बार गर्दन हिलाकर 'हां' का इशारा करके अपनी नजरें झुका ली। इसके बाद अचानक गर्दन सीधी करके होंठों की भंगिमा से उसने कहा, कल '

उसी के बाद से टुकड़े-टुकड़े में उसे तमाम बीती बातें याद आ रही थी। बीच-बीच में वह खुद से पूछ रही थी, 'तूने आखिर ऐसा क्यों किया ? मैं क्या कर बैठी ?'

उसके मन में वही पुराने सवाल उमड़ने लगे। उस आदमी को देखकर उसके मन में आक्रोश क्यों पैदा हो जाता था ? खून करने के बाद उसे ऐसा क्यों महसूस हुआ कि उसने बदला ले लिया है ?

इसके बाद सब गड्ड-मड्ड हो गया और वह अचानक एक उत्तरहीन, ध्वनिहीन एक अतल अनस्तित्व के अगाध सागर के सामने आकर खड़ी हो गयी।

इसके बाद वह पलटकर अपने उस जीवन में भाग आयी जहां दुःख से भरा और पछतावे से भरा जीवन था। उसने मन ही मन कहा—ओह, किस बुरी घड़ी में उससे भेंट हुई थी। क्यों ? आखिर उससे भेंट होने की जरूरत क्या थी ? वह तो खुद उससे मिलने नहीं आये थे। विहंगिनी खुद उनके पास गयी थी। गुरु-संन्यासी इन लोगों पर उसे कभी कोई आकर्षण नहीं रहा—इसके बावजूद वह मिलने गयी थी। वहां जाकर ही—।

तभी उसे पान का जूठन लिखाने वाला प्रसंग याद आ गया।

उसका सारा शरीर जैसे कांपने लगा।

थियेटर के मैनेजर ने उसे जाने से बार-बार मना किया था। कहा था, 'कम से कम तुम मत जाओ सुचन्द्रा !' वे उसे सुचन्द्रा कहकर ही बुलाते थे। सभी उसे विहंगिनी कहते, मगर वे नहीं।

उन्होंने कहा, 'देखो, तुम्हें दूसरे लोग भले ही न समझें, मगर मैं तो तुम्हें जानता हूं।'

जवाब में सुचन्द्रा क्या कहे, वह समझ नहीं पायी। मैनेजर ने जो कम्पलीमेंट उसे दिया था, उसका सम्मान करके उसका वहां न जाना ही बेहतर होता। लेकिन आश्चर्य—एक आश्चर्यजनक कौतूहल उसे वहां खींच ले जाना चाहता था।

थियेटर की लड़कियां सब यही बात कह रही थीं, 'परमहंसदेव के बाद ऐसा पवित्र आदमी और कोई नहीं हुआ। एकदम शिशु की तरह निष्पाप !'

मैनेजर ने कहा था, 'तुमने पहली मुलाकात के दौरान सुरेन के यहां जो कहा था वह मुझे आजीवन याद रहेगा।'

वह बात सुचन्द्रा को भी याद थी। उस दिन की बात याद करके उसे हंसी आयी थी। उसने कहा था, 'बड़ा आश्चर्य हुआ था न ?' एक गर्वभरी हंसी उसके होंठों पर छा गयी थी।

'चकित नहीं होता ?' मैनेजर ने कहा था, 'यह कोई मामूली बात थी ? पहली मुलाकात में ही तुमने कहा कि मैं सुरेन बाबू की विवाहिता नहीं हूं। आपके दोस्त की पत्नी और बाल-बच्चे हैं, मुझे पता है। लेकिन वह आदमी कलाकार है और दो-तीन औरतों के साथ गृहस्थी बसाने लायक रोजगार भी कर लेता है [illegible]

म इनके साथ रन्ने चली आयी उसने मुझसे प्राथना की थी मेरी ओर से भा कह सकती हूं एडमिरेशन था और अभी भी है।'

उसे अच्छी तरह याद है कि उसकी बातें सुनकर मैनेजर के चेहरे पर बेचारगी छा गयी थी। यह देखकर सुचन्द्रा को हंसी आ गयी थी। उस पहली मुलाकात के दिन हंसी तो आयी भी थी, मैनेजर ने उससे जिस दिन इस घटना की चर्चा की, उस दिन भी उसे हंसी आ गयी। वह हंसी भी थी।

मैनेजर ने कहा था, 'तुम संन्यासी गुरु या वाबाजी या किसी महंत से मिलने जाओगी, मैं सोच भी नहीं सकता था।'

'जरा जाकर देख ही आऊं।'

'क्यों ? अव वह मन नही रहा ? दुर्वल हो गया है ?'

'नहीं, वस देखना चाहती हूं। इस जवान निष्पाप शिशु-संन्यासी को देख आऊं।'

'मजाक उड़ाने जाओगी ? क्या फायदा ?'

इसके वावजूद वह खुद को रोक नहीं पायी थी। वह गयी थी। उस व्यक्ति का तरुण दीप्त सबल चेहरा और स्पष्ट बातों के साथ उसकी हंसी ने उसे आश्चर्यचकित कर दिया था। उसके पहले किसी ने उससे इस तरह बातें नहीं की थी। उनमें ज्यादा ताकत है, इसलिए वह जवर्दस्ती लोगों को रुलाना चाहता है।' उह! ज्यादा जोर से गला फाड़कर रोना क्या किसी को अच्छा लगता होगा ?'

उसकी बातें उसे तीर की तरह चुभी थीं। जैसे किसी भाले ने भेदकर उसे खींच लिया था।

वे गुरुदेव महंत संन्यासी थे। पूरा देश ही इन्हीं से भर गया है। चेले-चापड लेकर सज-धजकर बैठते ही काम फतह। बस सुंदर चेहरा और कुछ दार्शनिकों जैसी बातें तथा बात-बात में ठठाकर हंसने वाला होना चाहिए। इसके अलावा अगर मीठा गला हो तो फिर स्वर्ग मर्त्य, पाताल-तीनों ही चरणों में लोटने लगेंगे। गुरुजी नाटक देखने आये थे, उसी वक्त उन्होंने ये बातें कही थीं। स्टेज पर से सुचन्द्रा की नजर उन पर पड़ी थी। थियेटर के काफी लोग उनके शिष्य और शिष्याएं थीं। उन्ही मे एक नर्तकी आशा भी थी। उन्हीं लोगों ने गुरुजी और उनके संगियों को बॉक्स मे बिठाया, उन्हें माला पहनाकर प्रणाम किया। सुचन्द्रा उस नाटक में वेहद भावपूर्ण अभिनय करती थी। लोगों की आंखों में आंसू आ जाते। लेकिन गुरुजी विना किसी प्रतिक्रिया के खामोश बैठकर नाटक देखते रहे। न वह हंसे न रोये। रोने की बात दूर रही उन्होंने एक गहरी सांस तक नहीं ली। सुचन्द्रा बहुत भावुक होकर अभिनय करते-करते खुद रोने लगी, मगर उनकी आंखों में आंसू नहीं आए। बस सिर्फ एक जगह पर उन्होंने ताली बजायी थी।

नाटक खत्म होने के बाद उन लोगों ने गुरुजी को स्टेज पर लाकर बैठाया सभी ने उन्हें प्रणाम किया वह भी उन्हें प्रणाम करने और नजदीक से देखने की इच्छा से आ रही थी। वह उन्हें करीब से देखना चाहती थी। लेकिन गुरुजी को घेर हुए लोगों की भीड़ से कुछ दूर पर वह चौंककर रुक गयी।

गुरुजी नाटक के बारे में ही कह रहे थे, 'तुम लोगों ने बढ़िया नाटक किया। मुझे अच्छा लगा। काफी दुःखांत नाटक लिखा है। हां, संसार में दुःख भी कम नहीं है। लेकिन यह नाटक कुछ ज्यादा ही दुःखांत है। तुम लोगों की हीरोइन ने इस दुःख को बहुत प्रभावशाली बना दिया है। मुझे लगा कि उसने कुछ ज्यादा ही नाटकीयता पैदा की है। ओवर एक्टिंग।' यही बात कानों में पड़ते ही वह चौंककर रुक गयी थी।

वे कहते जा रहे थे, 'अभिनय बहुत कठिन चीज है। सबसे बड़ा अभिनेता कौन है, पता है ? ईश्वर ! भगवान्। खुद ही देखो, एक साथ कितनी तरह की भूमिकाएं निभा रहा है। जरा इस पर गौर करो। वही बाघ भी है, वही हिरण भी है। बाघ दहाड़ता है, हिरण आर्त्तनाद करता है। उसमें नाटकीयता नहीं है, है वास्तविकता। गुस्से में अगर नाटकीयता लायी जाए तो वह भयंकर नहीं लगेगा ? तुम्हीं लोग कहो। 'अरे बाप रे टुटुल !' कहकर वह इतनी जोर से रोयी कि लगा कि वह ठीक से रो नहीं रही है। वह टुटुल को डांट रही है।'

वह अपने प्रसाधन कक्ष में लौट आयी। वहां से दूसरे दरवाजे से बाहर निकलकर टैक्सी बुलवाकर घर चली गयी।

दूसरे दिन रविवार को मैटिनी शो के लिए मेकअप करते हुए उसने आशा से कहा था, 'आशा , तुम लोगों के गुरुजी तो बहुत बढ़िया अभिनय करते हैं। वे क्या साक्षात् ईश्वर हैं ?'

आशा को मिर्ची लग गयी। लेकिन मैनेजर ने उसे शांत कर दिया था। उन्होंने कहा, 'तुम लोग रामकृष्णदेव की पूजा करती हो, उन्हें प्रणाम करती हो। ईश्वर मनुष्य रूप में भी रहते हैं। वे इसके प्रमाण हैं।' फिर उसे आड़ में बुलाकर झिड़की दी थी, 'तुम भी खूब हो, नाटक चौपट करने पर तुली हो।'

विहंगिनी उस थियेटर की सिर्फ अभिनेत्री ही नहीं, एक प्रकार से सर्वेसर्वा थी। इसलिए आशा को खामोश हो जाना पड़ा था।

सोम, मंगल, बुध के बाद बृहस्पतिवार को भी वह एकदम तैयार होकर ही गयी थी, क्योंकि रविवार के बाद उस दिन भी गुरुजी के भक्तों का एक झुंड वहां आने वाला था। उधर मैनेजर ने चेतावनी दे रखी थी कि कोई इन सब मामलों में वाद-विवाद नहीं करेगा। उन्होंने विहंगिनी से भी कहा था, 'नहीं, नहीं यह सब अच्छी बात नहीं है ऐसा नहीं करना चाहिए।'

मगर बृहस्पतिवार के ... मामला उलट गया जैसे पछुआ हवा के साथ होने वाली बरसात पुरवया के ... में पलटकर और तेज हो गयी शुक्रवार को दैनिक अखबारों मे रंगमंच की समीक्षा के लिए एक पृष्ठ तय रहता है एक बडे अखबार के उस पृष्ठ पर उसके नाटक की डेढ़ कालम की समीक्षा छपी थी। उसे लिखा था आनंद सुंदर ने। मतलब उन्हीं गुरुजी ने।

वह समीक्षा बडी भी थी और विद्वतापूर्ण भी। सटीक भी। नाटक, अभिनय, प्रकाश व्यवस्था, दृश्य पट सभी की तटस्थ और यथार्थ समीक्षा थी। भारत के प्राचीन, आधुनिक नाट्यशास्त्र से लेकर विदेश अर्थात् यूरोप के नाट्यशास्त्र के उदाहरणों से पूरी समीक्षा भरी थी।

उसे पढ़कर मैनेजर ने कहा, 'अरे बाप रे, यह कोई मामूली आदमी नहीं है। बडे विद्वान् हैं।' विहंगिनी को वह अखबार थमाते हुए वे बोले, 'जरा पढ़कर देखो, तुम्हारे बारे में बड़े मजे की बात कही है।'

'मजे की बात ?'

'हां मजे की बात ! लिखा है, यह लड़की जन्मजात अभिनेत्री है, बडी प्रतिभावान है। इस मामूली नाटक को रंगमंच पर अकेले वही अपने अभिनय के बूते निभा ले जाती है। नाटक खराब होने के कारण अभिनय पर भी उसका असर नजर आता है। अयथार्थ भरी संवेदना के कारण उसे पूरे समय अपनी भूमिका मे जोर-जोर से बोलना, अनावश्यक हंसना-रोना पड़ता है, दर्शकों को उलझाये रखना पडता है। उसका अभिनय दर्शकों को सोचने का मौका नहीं देता। जिस दिन भी वह उस नाटक में अभिनय नहीं करेगी, दर्शकों के लिए नाटक के अंत तक बैठे रहना बहुत मुश्किल होगा। मैंने बचपन में जात्रा नाटक में भीम की भूमिका मे वीर रस का अभिनय देखने के बजाय वीर रस का विद्रूप देखा है। लेकिन लोग उसी में विभोर हो जाते थे। उस अभिनेत्री ने भी ठीक इसी तरह इस नाटक को जमा रखा है।'

बात सही भी थी। नाटक करते वक्त ही यह बात महसूस हुई थी।

उस थियेटर के मैनेजर और नाटक के डायरेक्टर दोनों एक ही व्यक्ति थे। वे भी प्रतिभावान व्यक्ति थे। पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। बांग्ला नाटकों के बारे में उन्हें काफी जानकारी थी। एक के बाद एक तीन नाटक पिट जाने के बाद उन्होंने इस नाटक को आजमाया था। इसके आवेग के कारण ही उन्होंने इस नाटक को पसंद किया था। गला कंपाते हुए संवाद बोलने, चीखने, रंगमंच में नाटकीय ढंग से फटाफट प्रवेश और प्रस्थान करने मात्र से ही नाटक जम जायेगा। इसके साथ ही अगर प्रकाश व्यवस्था भी कुछ बेहतर कर दिया जाए तो फिर कहना ही क्या।

नाटक की प्रति उसको थमाकर मैनेजर ने कहा था, 'देखो अगर तुम राजी

हो जाओ इसमें थोड़ी चीप एक्टिंग कर सको तब मुझे लगता है यह नाटक हिट होगा उसने पढ़ने के बाद कहा था नहीं नहीं यह वाहियात नाटक भला कोई करता है। आप करिए, मगर मैं नहीं करूंगी। भला क्या दृश्य है—बच्चे की मौत के बाद भले ही भूख से मौत हुई हो, उसकी मां उसके आगे भीड़ के सामने अपने वक्ष पर हाथ रखकर चीखती है, 'अरे मेरे लाल, मेरा दूध बहा जा रहा है, इसे कौन पियेगा ? मेरी छाती फटी जा रही है। अरे ओ टुटुल ! मेरे लाल !' धत्त, यह मुझसे नहीं होगा।'

मैनेजर ने कहा था, 'देखो, मैं तुमसे कुछ कह नहीं सकता। तुम [illegible] हो। यह तो मुझे पता ही था कि नाटक तुम्हें पसंद नहीं आयेगा, इसलिए [illegible] तुम्हें पढ़ने को दिया था। लेकिन हम लोगों का थियेटर तो डूबने की कगार पर आ गया है। आर्ट, फाइनेंस ऑफ ड्रामा, लिटरेरी फ्लेवर, क्वालिटी यह सब तो [illegible] देखा। अब लगता है मैजिक, राजनीतिक भाषण, [illegible] का संगीत, बोल्ड सेक्स अपील इन सबका पंचमेल अगर पेश किया जाए तो फिर— । तुम सोच लो—तुम पर मेरे भी एहसान कम नहीं हैं। अगर नाटक हिट हो जाए तो समझ लेना तुमने ऋण चुका दिया।'

अतीत की उस कारुणिक स्मृति के बोतल को समुद्र के पानी से जाल में फंसाकर उस बोतल का कार्क भवेशबाबू ने खोल दिया था। धुएं की कुंडली की तरह अतीत की बातें बाहर आने लगीं।

सुचन्द्रा को याद आया—उस दिन वह अकारण ही कई बार पागलों की तरह प्रलाप कर उठी थी—आह, आह, नहीं।

आज भी फांसी के कैदियों के लिए निर्धारित कमरे में बैठी वह यह बात याद करके विचलित हो उठी।

टन्न ! टन्न !

जेल के फाटक की घड़ी के घंटे बज रहे थे।

टन्न ! टन्न !

एक-दो-तीन-चार—

टन्न ! टन्न !

कल तड़के ! सूर्योदय से पहले। ऐसा ही उसने सुना था, शायद पांच बजे। तब ! अब सिर्फ ग्यारह घंटे बचे थे।

उस अतल निरुद्देश्य के अथाह विस्तार के एकदम सामने खड़े होकर शायद ग्यारह डग जमीन के बाद वह सागर था। उसके कदमों में हल्की जुम्बिश हुई। अतीत की ओर देखते हुए एकदम आगे की बात जैसे वह भूल ही गयी थी।

आसमान में उजाला कम हो गया था। जेल के वार्डों की दीवारों की नींव से

अंधेरा जैसे जाड़े के भोर में दलदली जमीन से उड़ने वाले कुहासे की तरह कुंडली मारकर उठने के बाद विस्तृत होकर और ऊपर फैलता जा रहा था।

हर वार्ड का ताला बंद किया जा रहा था।

कंकरीले रास्ते पर भारी बूटों की आवाज हो रही थी। वार्डर आ रहा था। उसके सेल का बाहरी दरवाजा खोलकर भीतर के दरवाजे का ताला खींचकर देखेगा, फिर बाहर का ताला बंद करेगा। एक-दो बार उसे झटककर देखेगा।

यही नियम है।

इसके बाद चाबी का थैला लेकर चला जायेगा। जाते समय एक बार उसे देख जायेगा।

उसे हर रोज यह बड़ा विचित्र काम लगता। पहले कुछ ज्यादा महसूस होता था। धीरे-धीरे इसका अहसास कम होने लगा। आज उसे कुछ महसूस ही नहीं हुआ।

उसके मन के सामने वह अतल निरुद्देश्य का समुद्र लहरा रहा था। उसमें शाम ढलने का हल्का प्रकाश या बचे हुए दिन की जो कुछ भी दीप्ति थी वह प्रतिबिम्बित हो रही थी, वह उसे आकर्षित कर रही थी। वह उसे वाकई अपनी ओर खींच रही थी। उसके मन के भीतर के सारे अनुभवों का स्पंदन जैसे खामोश हो गया था।

उसका दिल जैसे डूबता जा रहा था।

ओह, फांसी-मृत्युदंड कितना भयानक होता है। ओफ, उसे रुलाई क्यों नहीं आ रही है ?

आश्चर्य !

ओफ !

बाहर की दुनिया का शोर वहां आ रहा था। लेकिन विहगिनी को वह सुनायी नही पड़ रहा था। उसे बेहद गर्मी लग रही थी।

जेल के अंदर भी शोर हो रहा था। कैदी अपने-अपने वार्ड में आ चुके थे। उनमें बातें हो रही थीं, झगड़े हो रहे थे। हम कमरे में कई-कई कैदी रहते थे।

धीरे-धीरे सब खोता जा रहा था। अथवा कहा जाए विहंगिनी खोती जा रही थी।

न जाने कब वह फिर से पीछे लौटकर देखने लगी। उसका अतीत उस पानी से निकाले बोतल के कार्क के खुलने से निकले धुएं की कुंडली की तरह चक्कर काटते हुए बाहर आ रहा था।

नहीं तुम बोतल में वापस लौट जाओ लेकिन वह इस तरह से तो नहीं जाता

ग़ुस्से न जाने कितनी स्मृतियां टुकड़ों में बाहर आ रही थीं

मैनेजर ने कहा था, हिट होने पर तुम्हारी सारी देनदारी चुक जायेगी। उपकार की देनदारी। हां, उसने उपकार किया था। बिल्कुल किया था। वह भुलाया नहीं जा सकता।

सुरेन आर्टिस्ट था। अपने पति को छोड़कर वह उसके साथ रहने लगी थी। भवेश–थियेटर के मैनेजर का, सीन एवं सेट वगैरह के कारण उससे काम पड़ता था। उसके साथ एक तरह की दोस्ती भी थी। शराब पीने की दोस्ती, अभिनेत्री के साथ हो-हुल्लड़ करने की साझीदारी की दोस्ती। इसमें जरा भी खांटी चीज नहीं थी, ऐसा कोई कह नहीं सकता। आवेश को पता था कि वह सुरेन की विवाहिता स्त्री नहीं थी। सुचन्द्रा ने खुद ही पहले परिचय के दौरान कहा था, 'मैं सुरेन की शादीशुदा बीवी नहीं हूं।' यह बात सुनकर भवेश को आश्चर्य नहीं हुआ था एवं जब उसकी सुरेन से खटपट शुरू हो गयी तब भी उसे आश्चर्य नहीं हुआ था। उन दोनों के बीच दुराव और मतभेदों को लेकर वह बिल्कुल नहीं चौंका था। विहंगिनी, नहीं, वह तब तक विहंगिनी नहीं हुई थी, उस वक्त वह सुचन्द्रा थी; सुचन्द्रा ने एक दिन सुरेन को तमाचा मार दिया था। सुरेन ने बदले में अपने पैर का सैंडिल उतारकर उससे उसे सात-आठ बार पीटा था। साथ ही बुरी गालियां भी दी थीं।

बुरी और अश्लील !

सभी बुरी और अश्लील बातों में जो समान भागीदार होता है, वही जब इस तरह की हरकतें करता है, उससे ज्यादा दिल दुखता है। सुरेन ने उसे गालियां दी थी। सैंडिल का हर प्रहार करते हुए कहा था—रंडी, कसबिन, कुत्ती। उसे यह सब इतना कटु और अश्लील लगा था कि हर बार विह्वल होकर उसके मुंह से निकल पड़ता था—क्या ? क्या ? क्या?

सुरेन ने उन्हीं शब्दों को फिर से दोहराया। उसी वक्त भवेश वहां पहुंच गया। मगर सुरेन पर जरा भी असर नहीं पड़ा था। वह बदस्तूर गालियां दिये जा रहा था। मगर भवेश ने उसे खामोश कर दिया। उसने कहा, 'ऐ सुरेन, स्वाइन कहीं का।' कहने के साथ ही बारूद में आग लगने की तरह वह भागकर भवेश का हाथ पकड़कर बोली थी, 'भवेशबाबू मुझे यहां से ले चलिए। मुझे बचाइए।' सुरेन ने आकर उसे धक्का देकर कहा, 'उस कमरे में चली जाओ।'

'नहीं।'

'चलो।'

'नहीं।'

'मैं कहता हूं, चलो।' सुरेन आर्टिस्ट ने इस बार उसका हाथ कसकर पकड़ लिया। जिससे उसके हाथ की चूड़ियां टूटकर कांच के टुकड़े उसके हाथ में चुभ गये।

वह मारे दर्द के रोने लगी—ओह मा

भवेश मैनेजर सुरेन पर नाराज था ही। उसने कड़े स्वर में कहा, 'सुरेन :

सुरेन ने कहा था, 'शटअप ! यह मेरी कुतिया है। जब मेरी तबीयत होगी इसे मै लतियाऊंगा।'

भवेश को भी गुस्सा आ गया। उसने कहा, 'तुम सिर्फ कमीने ही नहीं एक जानवर भी हो। तुम सुचन्द्रा को कुतिया कह रहे हो ? तुम्हारा तो मुंह तोड़ देना चाहिए।'

'इन्सान खरीदा नहीं जा सकता भवेश ! मैंने उसे खरीदा है। आई परचेस्ड हर। इसीलिए मैं उसे कुतिया कह रहा हूं। तुम क्या कहते हो, ऐं ? अब तुम क्या कहना चाहते हो ? फोर थाउजेंड रूपीज़ कैश !'

सुचन्द्रा ने अपने पहने हुए गहने खोलकर उसके सामने फेंककर बोली थी, 'यह लो, तुम यह लो। सब ले लो।'

सुरेन ने मुंह बिचकाकर कहा था, 'सुचन्द्रा, ये सब मेरे ही दिये हुए हैं। इन्हे मैंने ही खरीदकर तुम्हें दिया था। इनके रुपये भी अभी तक चुका नहीं पाया हू।'

सुचन्द्रा से अब और बर्दाश्त नहीं हुआ। प्रचंड वर्षा से कोई पेड़ हिलता-हिलता अचानक जड़ से उखड़कर जिस तरह गिर पड़ता है, उसी तरह वह भी गिर पड़ी थी। वह वाकई औंधी पड़ी हुई थी।

सुरेन ने भवेश से कहा था, 'तुम यहां से चले जाओ भवेश ! कृपा कर अब यहा मत आना।'

भवेश भी जैसे अपने आपे में नहीं रहा था। उसने कहा, 'चला जाऊंगा, लेकिन उससे पहले मैं जानना चाहता हूं, कि तुमने उसे खरीदा है, इसका क्या मतलब ? उन्होंने गहने खोलकर तुम्हें क्यों दिये ? मैं तुमसे नहीं पूछ रहा हूं। उनसे पूछ रहा हू। आप कहिए सुचन्द्रादेवी ?'

सुचन्द्रा की रुलाई जोर से फूट पड़ी। रोते-रोते उसने कहा था, 'आप उसे चार हजार रुपये देकर मेरी जान बचा लीजिए। आप मुझे खरीद लीजिए। भवेश बाबू—! आप उसे चार हजार रुपये दे सकते हैं ? मैं सचमुच आपकी बांदी बन जाऊंगी।'

भवेश उस वक्त एक बेहद हिट नाटक खेलने के बाद बड़े समारोह से नये नाटक की तैयारी कर रहा था। अपने प्रोडक्शन का एक बड़ा काम वह सुरेन को देने वाला था। भवेश के पास उस वक्त रुपयों की कमी नहीं थी। भवेश ने सुचन्द्रा से कुछ नहीं कहा, 'उसकी बातों का कोई जवाब न देकर उसने सुरेन से कहा, 'मैं जा रहा हूं सुरेन, मगर मैं तुम्हें चेतावनी देकर जा रहा हूं। मैं आज ही यह बात डी. सी. नार्थ को बताऊंगा और डी. डी. तक पहुंचाऊंगा। आज से तुम्हारे साथ मेरा संबध

र हो गया अब म किसी दूसरे से काम कराऊगा तुम भी बिना आज्ञा या
'कट लिये थियेटर कम्पाउड में घुसने की कोशिश मत करना ऐसा करोगे
नाना पडेगा
भवेश !' सुरेन के व्यवहार में अचानक तब्दीली आ गयी।
नहीं ! मैं जा रहा हूं।'
भवेश, बताओ तुम क्या चाहते हो ? मुझसे नीति और आदर्श की बात मत
स्पष्ट बता दो चाहते क्या हो ? इस औरत को चाहते हो ?'
हा।'
ठीक है, मुझे चार हजार रुपये दे दो और तुम उसे ले जाओ। मैं उसे मुक्त
हू। अगर तुम चाहो तो यह बात कागज पर लिखकर भी दे सकता हू।'
भवेश ने कहा, 'नहीं। मैं तुम्हारी तरह कमीना नहीं हूं। मैं तुम्हें चेक लिखे
हू। नकद रुपये इस वक्त मेरी जेब में नहीं हैं।'
कुछ सोचकर सुरेन ने कहा, 'ठीक है वही दो। रुपये के मामले में तुम पर
स करके मेरा काम नहीं चलेगा। चेक ही दे दो। लेकिन थियेटर के प्रोडक्शन
काम मुझे ही देना पड़ेगा।'
जेब से चेक बुक निकालकर चेक पर दस्तखत करके उसकी ओर बढ़ाते हुए
कहा, 'लो। सुचन्द्रादेवी, आप उठिए। आप जहां जाना चाहती हैं चलिए, मे
हूं।'
सुचन्द्रा ने कहा था, 'उसके पास एक कागज है, उसे ले लीजिए।'
कागज ? कैसा कागज ?'
सुरेन ने एक शब्द भी नहीं कहा। चुपचाप अपना पोर्टफोलियो खोलकर उसके
ढूंढ़कर एक कागज निकाला। थोड़ा हंसकर वह बोला, 'यह लो। तुममे से
लेगा ?'
सुरेन के दांत बहुत भद्दे थे। काले धब्बों वाले बड़े-बड़े बेडौल और दांतो के
की जगह भी थी। उसके दो दांत नहीं थे, वहां उसने सोने के दांत लगा रखे
बेहद वल्गर व्यक्ति था। लेकिन तस्वीरें अच्छी बनाता था और बेहद कामी
भी था।
भवेश ने हाथ बढ़ाकर अपना हाथ खींच लिया। वह कागज सुरेन के हाथों से
ज़मीन पर गिर पड़ा।
भवेश ने उस कागज को उठाकर उस पर जिस व्यक्ति के दस्तखत थे, उसका
पढ़कर चौंक पड़ा। उसने चकित होकर कहा—'पार्थ मुखर्जी !'
सुरेन ने कहा, 'पढ़कर देखो। उसी ने मुझसे रुपये लेकर सुचन्द्रा को मेरे हवाले
था। पार्थ मुखर्जी से ही सुचन्द्रा की शादी हुई थी।'

'पार्थ मुखर्जी अंग्रेजी गानों का वह मेहरा लगने वाला गायक

'हां

'माई— !' अपना विस्मय प्रकाश करते हुए वह रुक गया। भवेश हतवाक् हो गया।

भवेश ने वह कागज सुचन्द्रा को दे दिया।

सुचन्द्रा उसे लेते हुए बोली थी, 'मैंने इस कागज की बात नहीं कही थी। मे हैंडनोट की बात कह रही थी। तुम्हारी कही गयी बातें मुझे याद हैं सुरेन ! तुमने उस नर्क के सुअर से कहा था, यह चिट्ठी मैं रख रहा हूं, लेकिन इसका मूल्य क्या है ? इस जमाने में मैंने बेच दिया' लिखने भर से किसी इन्सान को बेचा नहीं जा सकता। यहां तक कि 'मैं अपनी इच्छा से इतने रुपये में बिक रही हूं।' यह बात विभा भी लिखकर दे दे तब भी वह नहीं बिकेगी।' मैंने तुम्हें हैंडनोट लिखकर दिया था। मैं वही हैंडनोट वापस चाहती हूं।'

'दैट इज ऑलराइट सुरेन ! दैट्स ऑलराइट ! तुम्हारी व्यावहारिक बुद्धि की मे हमेशा कद्र करता हूं। ऐसा ही होगा। मैं भी लिखकर दे सकता हूं। मगर तुम्ही कह रहे हो, इसका मूल्य क्या है ? विभा ने कहा, तुम चुप रहो पार्थ। तुम्हें बर्दाश्त करना अब मेरे लिए मुश्किल हो गया है। सुरेन को मैंने हैंडनोट लिखकर देने की बात कही है। मैं ही लिख देती हूं। अगर बिकना ही हो तो मैं खुद अपने को बेचूंगी। तुम मुझे बेचोगे, मैं यह नहीं होने दूंगी।'

बेहया की तरह पार्थ ने कहा था, 'सुरेन, तुम्हारे पास रेवेन्यू स्टैम्प है ?'

सुरेन ने तुरंत अपने पर्स से रेवेन्यू स्टैम्प निकालकर दे दिया।

पार्थ ने कहा था, 'तुम बड़े प्रैक्टिकल हो सुरेन ! मैं तारीफ करता हूं।'

विभा ने पूछा, 'बताओ सुरेन, तुमने आज तक कितने रुपये दिये हैं ?'

सुरेन ने कहा, 'रहने दो विभा, जरूरत नहीं है।'

'नहीं, है। बताओ ?'

सुरेन ने हिसाब दिया था—साढ़े तीन हजार रुपयों का।

पार्थ ने कहा, 'तब तुम चार हजार लिखो विभा। सुरेन आज मुझे पांच सौ रुपये देगा। मेरा आखिरी बकाया। डाइवोर्स की रजामंदी का जो कागज मैं दे रहा हूं आखिर उसकी भी तो कोई कीमत होती है। है कि नहीं विभा !'

विभा के बदले सुरेन ने कहा था, 'नहीं, तुम्हें अब एक और पैसा भी नही दूंगा।'

पार्थ नु मुस्कराकर सिर हिलाते हुए कहा, 'तब तो संभव नहीं है।'

उसने जानबूझकर बातों को मुंह बिराकर कहा था, 'तब तो संभव नहीं है। तुम्हें जो करना है कर लो। विभा भी कर सकती है। तुम्हें पता है, तुम लोग औरतों

की जिस चीज को बेहद पवित्र महसूस करते हो हालांकि मैं उसे झूठ समझता हूं, फिर भी उसकी अच्छी खासी कीमत तो है ही। विभा की मां से उसके बाप ने शादी नहीं की थी। उससे शादी करके मैंने ही उसे उस पवित्रता को अर्जित करने का मौका दिया था। अब तलाक के लिए मैं रजामंद न हूं तो वह चीज तो धूल में मिल जायेगी। खुद ही सोचो।'

केंचुआ का बिल खोदने पर सांप निकल आए, बंगाल में यह प्रचलित मुहावरा है। सचमुच यही हुआ। अपना भारी-भरकम फन फैलाकर सांप सामने खड़ा था। उसकी चिरी हुई जीभ लपलपा रही थी। नहीं। विभा या सचुन्द्रा या विहंगिनी बेहद उतावली हो उठी। यहां फिलहाल सुचन्द्रा ही कहना ठीक होगा, क्योंकि अभी तक उसी नाम का जिक्र हो रहा था। मगर विहंगिनी—नाम उसे सबसे ज्यादा पसंद था—रूपवती विहंगिनी।

अस्थिर विहंगिनी भूल गयी कि कल सूरज निकलने से पहले उसे फांसी हो जायेगी। यादें उसके सामने फन उठाये सांप की तरह खड़ी थीं। अस्थिर सुचन्द्रा अकारण ही चंचल हो उठी, फिर बैठ गयी। उसके घने काले बाल थे। उसके दुर्लभ रूप को दुगुना करने में उसके बालों का बड़ा हाथ था। अपने ढीले-ढाले जूड़े को उसने अकारण ही खोल दिया। इसके बाद दोनों हाथों से उन बालों को सामने पलटकर उसने अपना चेहरा ढंक लिया। अभिनय करते समय वह कई बार इसी तरह बालों से अपना चेहरा ढंक लिया करती थी। आज वह अभिनय नहीं कर रही थी, अकृत्रिम आवेग से उसने जैसे खुद ही उन काले बालों की राशि से अपने चेहरे को ढंक लिया था—या फिर आंखों के सामने की दुनिया को ढक लिया था।

नाटक के मैड दृश्य इससे खूब जमते थे। मगर आज वह वाकई पागल हो जाना चाहती थी। बालों के ढेर को उसने अपने चेहरे पर लाकर उसे जोर से खींचकर वह कुछ देर तक खामोश बैठी रही।

पार्थ। उसे पार्थ मुखर्जी याद आ रहा था। उसकी याद इस तरह आ रही थी कि हटाये नहीं हट रही थी।

रात बीतने के पहले अर्थात् सूरज के उगने से पहले ही उसे फांसी हो जायेगी। उससे भी ज्यादा मर्मभेदी एक स्मृति की कसक में विहंगिनी—नहीं सुचन्द्रा अपने अभ्यस्त अभिनय की भंगिमा के अलावा एक दूसरी भंगिमा में अपने वेदना जर्जरित अंतर को किसी भी प्रकार से जाहिर नहीं कर पाती।

टन्न ! टन्न ! घंटे की आवाज फिर सुनायी पड़ी। कितने बजे थे ? छह के बाद सात। टन्न ! टन्न! टन्न ! समय भला किसके रोके रुकता है ? वह अपनी राह चलता रहता है। सात नहीं, इस वक्त आठ बजे थे। सात कब बजा उसे ख्याल ही नहीं रहा।

दूसरे वाडा मे अभी तक कैदियो का सामाजिक क्रियाकलाप चल रहा था जेल की चारदीवारी के बाहर की दुनिया से भी लोगों के क्रियाकलापो की आवाज आ रही थी। खंजड़ी-ढोल बजाकर बाहर कुछ लोग गा-बजा रहे थे। ट्राम वस चलने की भी आवाजें आ रही थीं। जेल के अंदर रेडियो वज रहा था। भजन-कीर्तन गाने वालों की मडली भी लगता है खूब जमी थी।

नहीं—नहीं, आज तो सिर्फ रेडियो बज रहा था। भजन-कीर्तन नहीं हो रहा था। कल एक औरत को फांसी दी जायेगी। एक विचित्र सहानुभूति के कारण वे भी उदास थे। बीच-बीच में अकारण ही उनके सीने से गहरी सांस निकल आयेगी। 'ए' क्लास के वार्ड में, राजनीतिक बंदियों के वार्ड में भी बौद्धिक या राजनैतिक वहस में भी मानो तेजी नहीं आ पा रही थी। सेल में जो लोग अकेले थे, उनके अंदर भी बेचैनी बिल मे सांप की तरह कुंडली मार रही थी। उनकी सांसें भी उनके मन की चिंता को जाहिर कर रही थीं।

कन्डेम्ड सेल में बैठी विहंगिनी—नहीं सुचन्द्रा अपनी अस्त-व्यस्त चिंताओ के बीच जाने कब एकदम भूली हुई या भुलानेलायक यादों के बोतल के कार्क को खोल बैठी थी। ऐसी भूल जाने लायक अवांछित यादें धुएं की कुंडली की तरह उसमे से निकल रही थीं। धीरे-धीरे आंखों के सामने वे आकार धारण करती जा रही थी।

वह उन्हें बरज रही थी। नहीं—नहीं—ऐसी यादें दूर रहें। ये सब धुआं हो गयी यादे धुएं की तरह ही विलीन हो जाएं। मगर ऐसा हो कहां रहा था—होने वाला भी नही था। दीर्घकाल से बोतल में वंदी क्षुव्ध दैत्य की तरह विकट आकार लेकर वे यादे सामने खड़ी होती जा रही थीं।

ओफ, वह इन्हें देखना नहीं चाहती। अपने चेहरे पर फैले रूखे बालों को वह अपनी मुट्ठियों में भींचकर पूरे जोर से खींचने लगी।

फिर भी पार्थ मुखर्जी की बातें याद आने लगीं। पार्थ मुखर्जी। पार्थ मुखर्जी भी वडा विचित्र था। बुद्धिवादी, अति आधुनिक—वह उन्हीं लोगों की तरह था जिनके पास केवल बुद्धि होती है, लेकिन दिल नहीं होता। उन्हें सिर्फ हार्ट नामक एक वस्तु की जरूरत होती है—हृदय की नहीं। पार्थ आर्टिस्ट था—गाने का आर्टिस्ट। अति आधुनिक। उसने यहां एक स्कूल खोल रखा था। सब कुछ जहां विदेशी था। बस इतना था कि रवीन्द्र संगीत को नकारने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। नही तो इस देश का उसके लिए सब कुछ कूड़ा था।

वह दुबला-पतला तथा कद में छोटा था। चबा-चबाकर बोलने की उसकी आदत थी। आधुनिक युग की बड़ी-बड़ी बातें। गांधीजी को बीसवीं शताब्दी के बूढी फिलास्फी की व्यर्थता का प्रतीक कहता था। आजादी के बारे में राय थी—राम नाम सत्य है' मार्का आखिरी हिचकी लेने का अबाध अधिकार। कम्यूनिज्म के बारे मे

वह कहता था दीमक लगी संस्कृति अथवा इमिटेशन आफ दीमक राज

संगीत की दुनिया मे वह क्रांति लाना चाहता था। इस देश की प्राचीन शैली को खत्म करके यूरोपियन सुर में यूरोप का गीत। सब कुछ यूरोपीय। नृत्य संगीत सब कुछ। यूरोप के बैले पर पार्थ मुग्ध था। लेकिन उसका दुर्भाग्य यह था कि उसका गला लड़कियों जैसा था। हाथ-पैर हिलाने में भी औरतों जैसी भंगिमा रहती थी। उसकी शक्ल-सूरत भी वैसी ही थी। लंबाई में पांच फुट तक भी वह पहुंच नहीं पाया था।

वह पीछे से सोलह-सत्रह साल से ज्यादा नहीं लगता था। ऐसा अब भी लगता होगा। मगर अब थोड़ा कुबड़ा नजर आता होगा।

उसने विभा से शादी का खुद प्रस्ताव किया था। किसी जमाने में वही उसका पति था।

विभा ! हां उस वक्त उसका नाम विभा था। एक प्रतिष्ठित व्यवसायी की प्रेमिका की वह बेटी थी। वे दोनों जीवन-भर पति-पत्नी की तरह रहे लेकिन कभी शादी नहीं की। मरने के बाद उस व्यवसायी की संपत्ति उनके विवाहित औरत के बेटों को ही मिली थी, विभा को उन्होंने स्कूल में पढ़ाया-लिखाया था। वहां पर उसके पिता के रूप में उन्हीं का नाम लिखा था।

मणिलाल सेन की बेटी विभा सेन। उन्होंने सोचा था कि वे विभा की शादी विभा जैसा ही जिसका जन्म परिचय हो, एक अच्छे लड़के से कर देंगे। उसके लिए कुछ और भी सोचा था। विभा ने मैट्रिक की पढ़ाई के साथ गाना-बजाना भी सीखा था। उसे अपनी मां जैसा ही गला भी मिला था, मां से प्रारंभिक शिक्षा भी ली थी। इसके बाद उस्ताद से सीखा था। उन दिनों बंगाल में काजी नजरूल इस्लाम की गजल बड़ी लोकप्रिय थीं। इसके साथ अतुलप्रसाद का भक्ति संगीत भी। रवीन्द्र नाथ तो थे ही। विभा ने नजरूल इस्लाम और अतुलप्रसाद का गाना गाकर थोड़ा नाम कर लिया था। उन्हीं दिनों उसकी एक दिन पार्थ से मुलाकात हुई साथ ही तेज वहम भी।

पार्थ की उन दिनों काफी ख्याति थी। उस ख्याति का एक विशेष स्वरूप था। ऐसी भी ख्याति होती है जिसका हल्ला तो बहुत होता है लेकिन लोग उसे पसंद नहीं करते, उससे जुड़ते नहीं। उस व्यक्ति को दूर से प्रणाम करके हट जाते हैं। पार्थ का विलायती संगीत से चुराया हुआ संगीत उन्हें अच्छा नहीं लगता था। उस पर उसका महीन जनाना गला सुनकर वे और भी क्षुब्ध होते थे। इसके बावजूद हर नयी चीज की थोड़ी कद्र होती है, उत्तेजना रहती है। नया बच्चा जिस तरह जोर से रोकर अपने होने को जताता है, ऐसा नया भी ठीक उसी तरह आकर्षित करता है। पार्थ का नयापन वैसा ही था। बुद्धिजीवियों के बीच उसकी चर्चा होने लगी थी। अखबारों मे

उसकी तारीफ भी हुई थी ग्रामोफोन कंपनी ने उसके संगीत के कुछ रेकार्ड भी निकाले थे। लेकिन वह शोर कुछ ही दिनों बाद थम गया। अखबारों में चर्चा बंद हो गयी। उसके रेकार्डो की बिक्री भी सौ-सवा सौ से ज्यादा नहीं हुई। लेकिन पार्थ की ख्याति का रंग तब भी फीका नहीं पड़ा था या उसकी छवि में जो बारीक बाल जैसा दाग नजर आ रहा था उसमें अभी तक दरार नहीं पड़ी थी। अभी भी उसके प्रति लोगों की इज्जत थी। एक संगीत की महफिल में उसकी उपस्थिति में विभा गाने आयी थी। पार्थ मुखर्जी के वहां उपस्थित होने की बात सुनकर विभा को कौतूहल हुआ था। उसने बहुत मेहनत और लगन से गाना गाया था। सिर्फ पार्थ से प्रशंसा प्राप्त करने के लिए। लेकिन पार्थ ने बेहद अवज्ञा से कहा था—बिल्कुल कूड़ा !

उसने हाल ही में मैट्रिक पास किया था। लोग उसका गाना पसंद करने लगे थे। उस दिन महफिल में उसने नजरूल इस्लाम का गीत—ऐ बगीचे की बुलबुल, फूलों की शराब पर आज झूला मत झूल'—गाकर लोगों की वाहवाही लूटी थी। गाना खत्म होने के बाद आयोजनकर्ताओं के साथ जाकर उसने ऑटोग्राफ बुक पार्थ के हस्ताक्षर के लिए उसके सामने बढ़ाया था। पार्थ सिगरेट के धुएं के छल्ले बना रहा था। उसने उसकी ओर देखकर कहा था, 'तुमने तो गटल गाया न ?'

लज्जा और पुलक से भरकर वह बोली थी—हां। लेकिन उसके मन में पार्थ की भंगिमा और वेशभूषा देखकर थोड़ा उहापोह था। सारी चीजों के भीतर एक बनावटीपन और कुरुचि नजर आ रही थी।

पार्थ ने कहा था, 'तुम तो बड़ी सुंदर हो। प्रतिभावान भी। तब ये सब गाने क्यों गाती हो ?' इसके बाद धुएं के कुछ छल्ले निकालने के बाद ऑटोग्राफ बुक पर अपना बड़ा-सा हस्ताक्षर करते हुए बोला, 'तुम्हारा गाना अच्छा नहीं लगा। गला अभी पक्का नहीं हुआ है। पता है क्यों ?' पार्थ का बोलने का लहजा बीच-बीच मे कुछ खिंच जाता था। शायद स्टाइल के लिए। —'तुमने अपनी वॉइस का स्वीटनेस नष्ट कर दिया है। ये जो दोपी उस्ताद लोग एक आ-र-टी-फी-सियल गलेबाजी करते है—।'

फिर उसने उसकी ओर देखते हुए कहा था, 'समझी न ? 'झी' पर उसने एक रूखा झटका मारा था। उसकी जो शैली थी उसके असर की बात तो करनी ही होगी। विभा को वह बात बुरी लगी थी। जैसे मुट्ठी भर अवज्ञा का कीचड़ उसने उसकी देह पर फेंक दिया।

विभा ने तुरंत जवाब दिया था—उसी तरह 'झ' और 'य' का उच्चारण करते हुए—'समझ गयी !'

इतनी-सी प्रगल्भता विभा में बचपन से ही थी। शायद अपनी मां से यह विरासत में मिली होगी।

जवाब में पार्थ ने भी वैसे ही लहजे में कहा था स-म-झ गयी मैं खुशी हुआ

साथ ही उसने अपने बगल के साथी की ओर देखकर कहा था, 'उस लड़की मे कुछ बात तो थी। कुछ क्या, काफी थी। लेकिन मार्जना नहीं थी। कल्चर नही था। इसलिए पुरानी ही रह गयी। गंवार रह गयी।'

इसके बाद सिगरेट के धुएं के तीन छल्ले बाहर निकालते हुए कहा था, 'रूरल प्रोडक्शन में ताजी सब्जी—जिन्दा मछली और महीन चावल मुझे वाकई पसंद है। संगीत के क्षेत्र में जब बाउल संगीतकार गायगुबागुब बजाकर धपांग-धपांग करके नाचता है, तब मेरी इच्छा होती है कि मैं कुछ देर के लिए मर जाऊं।

विभा बेहद क्षुब्ध और दुखी होकर वहां से लौटी थी। आज की तरह पहले कभी किसी ने उसे इस तरह रूढ़ एवं भद्दे ढंग से अपमानित नहीं किया था।

कुछ दिन बाद एक म्यूजिक कंपटीशन में वह शामिल हुई थी। वहां पर निर्णायकों में पार्थ भी था। अपने वर्ग में गजल में शास्त्रीय संगीत में वह प्रथम आयी थी। लेकिन सबको मिलाकर पार्थ के कारण श्रेष्ठ गायक का पुरस्कार उसे नहीं मिल पाया था। उसने उसे इस वर्ग में शून्य दिया था।

सिर्फ एक बार नहीं, और भी कई बार ऐसा ही घटा था, जिसके कारण विभा के मन में उसके प्रति बेहद आक्रोश पनप गया था।

बड़े आश्चर्यजनक तरीके से उसे एक दिन बदला लेने का मौका मिल गया और उस मौके का विभा ने भरपूर लाभ उठाया।

यह मौका खुद पार्थ ने उसे दे दिया था या विधाता ने अपने विशाल चक्र को घुमाते हुए वह मौका ला दिया था—विभा ने इस बारे में कभी सोचा नहीं। आज इस क्षण भी न वह इस बात को सोच रही थी—या इसे सोचने की उसकी मानसिकता ही थी।

बस सिर्फ वह घटना उसे याद आ गयी थी।

पार्थ ने एक संगीत का आयोजन किया था। टिकट बेचकर किया जाने वाला कार्यक्रम। एक मंझोला हाल किराये पर लेकर उसे सजा-धजाकर आयोजन किया गया था। उसका नाम उसने रखा था 'भविष्य का संगीत।' उसने एक लिखा हुआ भाषण भी पढ़ा था।

बावन इंच की धोती और ढीला-ढाला कुर्ता पहनकर वह कतई नहीं जंचता था। यह जानते हुए भी उस दिन उसने यही पहना था। उसने उसी पोशाक में भाषण दिया था। लोगों ने खासकर कुछ युवाओं ने सीटी बजायी और जूते घिसे। शास्त्रीय संगीत के प्रति उसके ओछे विचार सुनकर लोग बेहद नाराज हो गये।

इसके बाद 'भविष्य का संगीत' आरंभ हुआ

लोगों के कान दूसरे देश के संगीत को तभी ग्रहण कर पाते हैं जब उस संगीत से उनका थोड़ा बहुत परिचय होता है। ऐसा कान श्रोताओं में कम लोगों के पास ही था। इसके अलावा पार्थ के छात्र-छात्राओं में हर देश के गीत गाने लायक जन्मजात प्रतिभा किसी में नहीं थीं। श्रोताओं के अनभ्यस्त कानों को विदेशी सुर अच्छा नही लगा। उस पर बेसुरे सुर से लोग और भी उखड़ गये। फलस्वरूप शोरगुल शुरू हो गया।

इसके फलस्वरूप एक लड़की, जो कोरस दल में बीच में खड़ी होकर गा रही थी ऐसी घबरा गयी कि उसका गला लगभग बैठ ही गया। प्रारंभ से ही इधर-उधर से फब्तियां कसने की आवाज आ रही थी, इस बार उस लड़की की इस शोचनीय हालत को देखकर दर्शक ठठाकर हंस पड़े। एक अद्धा ईंट अचानक किसी पर आ गिरे ठीक वही हाल हो गया। इसके साथ ही कोई जानवर की बोली बोलने लगा। लगा वहां तांडव हो रहा हो। स्टेज पर खड़ी लड़कियों की बोलती बंद हो गयी। दो-चार लड़कियों की आंखों में आंसू आ गये। दर्शकों में से कुछ लोग खड़े हो गये और जोर-जोर से चीखने लगे। वे जो कुछ कह रहे थे वह सुननेलायक नहीं था।

और कोई दूसरा वक्त होता तो उन बातों को याद करके सुचन्द्रा शायद मन ही मन हंसती। लेकिन आज वह हंस नहीं पायी। कल भोर रात में ही—।

सब थम गया।

सुचन्द्रा के मन में वीरानी छायी हुई थी। उसके कानों में भी कोई शब्द नही जा रहा था। आंखें से भी कुछ नजर नहीं आ रहा था। कमरे में बत्ती जल रही थी, जिससे बाहर से वह नजर आती रहे। उस रोशनी में शाम के वक्त छिपकलियों ओर कीड़ों का खेल नजर आता था। वही भयंकर खेल—मौत के शिकार का खेल। आज भी छिपकली एक कोने में मौजूद थी। खामोश होकर दीवार से सटी हुई थी। आलोकित चूने से पुती दीवार पर छोटे-छोटे कीड़े कभी बैठ रहे थे, कभी उड़ रहे थे। वे एक-दूसरे का धावा कर रहे थे। सुचन्द्रा इसका अर्थ जानती थी। पुरुष औरत का धावा कर रहा था। कल भी उसे यही बात याद आयी थी। कल भी उसे हंसी आई थी। इसका अर्थ पार्थ ने ही उसे समझाया था।

सूने खाली, एकाकी मन में फिर से स्मृति की तस्वीर हिल उठी। सुचन्द्रा ने गहरी सांस ली। पार्थ मंच पर आकर खड़ा हो गया था। उसने हाथ जोड़कर कहा था, 'आप लोग शांत हो जाइए। इतना शोर करेंगे तो हम अपना गाना कैसे सुनायेंगे।'

किसी मुंहफट युवक ने कहा था, 'गाना ? यह बेसुरी चीख-पुकार क्या गाना है ?'

पार्थ जितना नर्वस था उतना ही यह बात सुनकर उखड़ गया बोला यह गाना नहीं है आप लोग संगीत के बारे में क्या जानते हैं ?

यह कहते ही जैसे आग में घी पड़ गया। वह उद्धत युवक कूदकर मंच पर चढ़ गया। उसके पीछे-पीछे और भी कई लोग थे। पीछे के लोगों में दो गणमान्य व्यक्ति भी थे। उन्होंने उस दिन उस युवा की मुट्ठी से पार्थ के गले की चद्दर छुड़ाकर स्टेज से ही दर्शकों को संबोधित करते हुए कहा, 'आप लोग बैठिए। बैठिए। अभी गाने का कार्यक्रम चलेगा। अच्छा ही गाना सुनने को मिलेगा। मगर जरा धैर्य रखना पड़ेगा।'

एक प्रसिद्ध गायक भी आमंत्रित श्रोताओं में थे। रजनी घोष। विभा के रजनी दा। उन लोगों ने उन्हें ही बुलाकर माइक के सामने बैठा दिया।

रजनी घोष ने ही विभा को स्टेज पर बुलाया था। विभा (उस वक्त सुचन्द्रा नहीं हुई थी) टिकट खरीदकर पार्थ के इतने विज्ञापित कार्यक्रम विलायती संगीत में गाये बंगला गीत सुनने आयी थी। हाल में घुसते वक्त संयोग से रजनी दा से भेंट हुई थी। रजनी दा ने अपना गाना खत्म करके स्टेज से उतरकर उसका हाथ पकड़कर कहा था, 'चलो, तुम भी गाओ। उस आदमी की जान तो बचानी होगी। चलो।'

'मैं गाना गाऊं ?'

'क्यों नहीं गाओगी ? इस सभा में अपना रंग जमा दो। लोग उखड़े हुए हैं। अपने मधुर गले से काजी साहब का एक गाना सुना दो और इसके बाद एक भजन अतुलप्रसाद का। देखना, जादू छा जायेगा।'

शायद उन्होंने पार्थ के प्रति व्यंग्य से ही कहा था। क्योंकि देसी संगीत के प्रति पार्थ के मन में जितने दुराव का भाव था, उससे भी ज्यादा दुख आधुनिक जमाने के गीतकारों के गानों का भी करता था। इस बात से विभा के मन में ताकत का संचार हुआ। पार्थ ने उसके प्रति अवज्ञा बरतते हुए क्षेत्र विशेष में उसे छोटा करना चाहा था आज प्रतिशोध लेने का मौका विधाता ने उसे दे दिया था। उसने इस मौके का भरपूर फ़ायदा उठाया। उखड़ी हुई महफिल को उसने वाकई जमा दिया था। खासकर अतुलप्रसाद के दो भजन तो उसने बेहद खूबसूरती से गाये थे। एक के बाद एक पांच गाने गाकर भी श्रोताओं ने उसे छोड़ा नहीं। उनके जोरदार आग्रह को उसे स्वीकार करना ही पड़ा। काजी साहब के 'ओ बगीचे की बुलबुल' और अतुलप्रसाद के 'टूटे कुंजवन में कौन बजता है बांसुरी' इन दो गानों में उसने ऐसा रंग जमाया कि इसकी ख्याति महीने-भर के अंदर ही ग्रामोफोन कंपनी के दफ्तर तक पहुंच गयी।

उसके सेल के बाहर दो जोड़ी बूटों की आवाज आकर थम गयी। विहंगिनी दरवाजे की ओर पीठ किये बैठी थी। उसके सोचने का क्रम वहीं ठहर गया। हां, ठहर ही

गया। विलीन नहीं हुआ। जो लोग उसके सेल के बाहर आकर खड़े हुए थे वह उन्ही पर खीझ उठी। गहरी चिंता में डूबे किसी व्यक्ति के सामने कोई अजनबी आकर खडा हो जाए तो कैसा लगता है, वही मनोदशा उसकी हुई। चिंता अचानक रुक जाती है। उस आदमी के चले जाने पर वही चिंता फिर से गतिशील हो जाती है।

उसे पता है वे क्यों आये थे। वे यह जानने आये थे कि वह ठीक-ठाक है कि नहीं। इस वक्त उसका हार्टफेल होने पर भी जेल अधिकारी की शामत आ सकती थी।

जूतों की आवाज फिर वहां से दूर चली गयी। विभा या सुचन्द्रा या विहंगिनी फिर से अपने सोच में डूब गयी।

ग्रामोफोन कंपनी से जब उसे आमंत्रण मिला था, उस वक्त उसने पार्थ से शादी कर ली थी।

इसी विचित्र घटना से ही उनकी शादी भी हो गयी।

आयोजन खत्म होने के बाद पार्थ शर्म से सिर झुकाकर चेहरे पर बेचारगी झलकाता हुआ खिसियाई हंसी हंसता हुआ सामने आकर खड़ा हो गया। थोड़े मोन के बाद वह बोला था, 'तुम्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूं विभा, मैं समझ नहीं पा रहा हू।' इस बार उसका कहने का लहजा सहज था। उसकी आवाज जनानी और मधुर थी। उसके साथ उसकी आतंरिकता भी उसे बहुत अच्छी लगी थी।

डी. एल. राय का एक गाना है—सुधा सिंधु उमड रहा है, पूर्ण चन्द्र है आसमान में।' उसे ठीक वैसा ही लगा था। इतनी खुशी उसे पहले कभी नहीं हुई थी।

उस समय वह पूर्ण युवती नहीं हुई थी। उस वक्त भी उसके कैशोर्य की कमनीयता उसकी आंखों में मौजूद था। ऐसे समय पार्थ ने उससे विनती करते हुए क्षमा मांगी। अपनी हार मानी। वह उसे इतना मधुर लगा था कि पृथ्वी की जानी-पहचानी मधुरतम चीजें भी उसके आगे फीकी पड़ गयी थीं।

वह लगभग विह्वल हो गयी थी। उसने कहा था—अरे नहीं, नहीं। यहां के श्रोता विलायती संगीत तो समझते नहीं, इसीलिए नासमझी में शोर मचाने लगे थे। और वह लड़की भी काफी ज्यादा ही बेसुरी हो गयी थी। नहीं तो जब आर्केस्ट्रा बज रहा था लोग शांत थे।

पार्थ को ढाढ़स बंधाने के लिए ही उसने ऐसा कहा था।

पार्थ ने कहा था, 'तुम्हें एक बार फिर धन्यवाद देता हूं विभा। तुमने असली बात समझी है। अगर तुम्हारी रुचि हो तो मैं तुम्हें वेस्टर्न म्यूजिक सिखा सकता हू। सीखोगी तब जानोगी कि उनका संगीत कितना खूबसूरत है। अगर तुम्हारी जैसी शिष्या मिले तब तो ।' उसकी आंखों में एक दीन याचना उभर आयी थी

उसने कहा था 'उस्ताद जी से पूछूगी

'उस्ताद जी से क्यों ?

उसने आधा सच ही कहा था। एक ही बार में राजी होने का उसका मन नहीं हुआ था। इसका उसे फल भी मिला था। पाश्चात्य संगीत के विशेषज्ञ पार्थ मुखर्जी का आग्रह भी दिनों-दिन बढ़ता गया।

जीवन में एक नये स्वाद को वह महसूस कर रही थी।

बड़े आश्चर्य से इसके साथ एक और स्वाद जुड़ गया।

उसके कंठ माधुर्य के साथ ही पार्थ ने एक दिन उसकी रूप माधुरी की भी प्रशंसा की। पार्थ की वह चिट्ठी अभी तक उसके पास है। यहां नहीं, घर में गहनों के डिब्बे के एकदम नीचे गुलाब की पंखुड़ियों के साथ रखी हुई थी। 'अपने रूप की शिखा में मुझे खुद को जलाने दो विभा ! शायद गलत कह गया, तुम्हारे रूप प्रदीप की शिखा कहना गलत है, यह तो चांदनी है। तुम चांद हो। तुम्हारा नाम चन्द्रा है। तुम चन्द्रा—नहीं, उससे भी सुंदर—सुचन्द्रा हो। विभा नहीं हो।'

इसके बाद कुछ दिनों तक पार्थ के साथ उसकी संगीत साधना कपोत-कपोती के गुंजन की तरह होती रही। विभा उसी में खो गयी। विभा नहीं, सुचन्द्रा ! पार्थ ने अदालत में एफिडेविट कराया था कि अब उसका नाम विभा नहीं सुचन्द्रा है। उसी नाम से ही उसने पार्थ से रजिस्ट्री शादी की थी। मां-बाप की बिना अनुमति के ही। उस समय ग्रामोफोन से उसका रेकार्ड जारी हो रहा था। पार्थ का रेकार्ड नहीं जारी होता था, मगर उसका जारी होता था। अब वह अठारह पार कर चुकी थी। पार्थ उसे महारानी की संज्ञा देकर उसके बगीचे का माली बनना चाहता था। इस पराजित अहंकारी का रूप उसे बड़ा मधुर लगा था और उसी के खिंचाव से वह ब्राह्मण कुल की न होकर भी ब्राह्मण पार्थ से शादी करने के लिए अपने घर से सारे रिश्ते तोड़कर चली आयी थी। मां-बाप ने बाधा देने की कोशिश की थी पर वे कुछ कर नहीं पाये थे। उस वक्त उसके लिए पार्थ से ज्यादा उदार और गुणी व्यक्ति इस दुनिया में और कोई नहीं था। विवाहित मां-बाप की संतान न होने के बावजूद पार्थ ने उससे शादी करना चाहा था—वह इसी बात से अभिभूत थी। पार्थ के पास रहने के लिए एक कमरा था। वह कमरा छोड़कर उसने एक होटल में रहने का इंतजाम किया। कुछ यार-दोस्तों के बीच उसने बहूभात का आयोजन किया। पार्थ ने उसकी मांग में सिंदूर भरा था। उसने घूंघट निकालकर बहू बनकर पहली बार सभी को खाना परोसा था।

वह समृति मनोरम स्वप्न स्मृति की तरह आज उसे लग रही थी।

सुचन्द्रा का मन उस स्वप्न-स्मृति को पकड़े खड़ा था। उसे पीछे फेंककर नहीं जा रहा था।

उसने बड़े सुंदर ढंग से टेबल सजाया। फूलों से ... रात आठ बजे सब खाने

पर आमंत्रित थे। कमरे में रोशनी जगमग कर रही थी। फूलों के गुलदस्ते, टोकरी और मालाओं से कमरा भर गया। खाने की मेज पर बिछे चादर का रंग बेहद चटक था। उस पर जैसे गुलाब, दहलिया, क्रिसेन्थियम, गेंदा, लिली का समारोह लगा था।

यह सब कुछ पार्थ के चित्रकार दोस्त सुरेन की सुरुचि और निर्देश का फल था। उसी दिन उसका सुरेन से परिचय हुआ था। सुरेन उनकी शादी का गवाह था। वह पार्थ का घनिष्ठ दोस्त था।

पार्थ ने उससे उसका परिचय कराते हुए कहा था, 'यह मेरा दोस्त सुरेन है। आर्टिस्ट सुरेन राय। तुमने नाम जरूर सुना होगा। मैंने भी जिक्र किया था। अच्छा आर्टिस्ट है, काफी नाम है, काफी कमाता भी है। इसके अलावा बेहद माडर्न और दिलदार भी है। कम से कम मेरे लिए। सबसे बड़ी बात यह है कि बड़ा रसिक भी है। सुरेन, यह मेरी नवविवाहिता सुचन्द्रा है, इस विवाह के साक्षी तुम हो और इसकी सुदरता भी देख रहे हो। गुणों से भी परिचित हो जाओगे। और आशा करता हूं कि तुम भी इसके गुणों पर मुग्ध होगे। संभव है आज ही हो जाओ। इसका गला बडा मीठा है। बहुत सुंदर गाना गाती है। और वह भी बेहद माडर्न। संगीत की विधिवत शिक्षा ली है।

सुरेन गंभीर व्यक्ति था। लम्बे, मजबूत कद काठी वाले उस व्यक्ति की नजरे उसे अच्छी नहीं लगी थीं। उसमें कुछ ऐसी गंभीरता थी जिसे देखकर मन पीछे हट जाता था। काफी ज्यादा ही गंभीर वह लगा था।

सुरेन के चेहरे पर जल्दी मुस्कराहट नहीं आती थी। फिर भी उसकी ओर देखकर थोड़ा मुस्कराते हुए सुरेन ने कहा था, इनके गाने की तारीफ सुनी है। आज सामने बैठकर सुनने का मौका पाकर मुझे बेहद तृप्ति होगी। इनकी खूबसूरती की तारीफ नहीं करूंगा, सिर्फ इतना कहूंगा कि तुम्हारे सौभाग्य से मुझे ईर्ष्या हो रही है।

वह खुश होकर शर्मा गयी। उसे याद है उसके कान और गाल गर्म हो गये थे।

पार्थ ने कहा था, 'सुचन्द्रा सुन रही हो सुरेन क्या कह रहा है ? तो तुम चाहो तो एक ऑयल पेन्टिंग बनाकर अपनी निजी संपत्ति के रूप में रख लो।'

खाने की मेज पर बैठकर ये बातें हो रही थीं। दस-बारह लोगों के साथ डिनर हो रहा था। टुकड़ों में हंसी-खुशी की बातें हो रही थीं जैसे धूप के दिन साबुन के रंगीन फेन के बुलबुले ऊपर उठकर फिर फटकर शून्य में विलीन होते जा रहे हो। सारी बातें अब उसे याद नहीं। शायद याद भी हों। कोशिश करने पर याद आ सकती हैं लेकिन अब उसका वक्त नहीं है

बस सुरेन की बातें इस वक्त उसे याद आ रही थीं

सुरेन उस दिन की महफिल का सबसे मुख्य व्यक्ति था वह सपत्र भी था और सबसे ज्यादा गभीर व्यक्तित्व सपत्र व्यक्ति भी नजर आ रहा था सुरेन ही बाद मे उसके जीवन की राह म महगा और मजबूत जूता पहनकर अपने पैरो के निशान छोड़ता हुआ गुजरा था। इसीलिए उसी की याद इस वक्त आ रही थी। आज उसे इस हाल में जिन लोगों ने पहुंचाया था, वह उनमें एक था। वह उसकी ओर आकर्षित हो गयी थी।

नहीं, नहीं उसका आशय यह नहीं है कि वह मुग्ध हो गयी थी। बल्कि उसके अभिभावकों जैसे मनोभाव को उसने पसंद नहीं किया था। उसकी भौंहें सिकुड़ गयी थी। उसने एक बार सोचा था कहे, 'नहीं, आज गाना गा नहीं पाऊंगी। मेरा गला कुछ ठीक नहीं है। प्लीज आज नहीं। किसी और दिन।' लेकिन फिर उसने इरादा बदल दिया। बल्कि बड़ी तबीयत से उसने गाना सुनाया था। उसने बहुत अच्छा गाया था। विलायती स्वर में बड़ी तबीयत से एक बंगला गीत सुनाया था।

सभी ने तारीफ में तालियां बजायी थीं। सुरेन ने भी। लेकिन तालियों के बाद कहा था, 'वाह विलायती भोजन के साथ वैसा ही गाना। बहुत अच्छा। वेडिंग फीस्ट। डिनर टेबल। अब बंगालियों के कोहबर के साथ मेल खाता बंगाली भोजन जैसा ही कोई बंगला गीत सुना सकती है ? सुना है अतुलप्रसाद, काजी नजरूल इस्लाम के गीत आप बहुत अच्छा गाती हैं।'

पार्थ ने कहा था, 'हां, पहले वह गाती थीं, अब नहीं गातीं।'

सुचन्द्रा उस वक्त पार्थ की शिष्या और प्रिय सखी बनकर नये जीवन का आनंद ले रही थी। उसने पूछा था, 'क्या विलायती सुर आपको पसंद नहीं ?'

सुरेन ने कहा, 'ऐसी बात नहीं। आपका गाना भी बहुत अच्छा लगा। मेरे संग्रह मे देशी से ज्यादा विदेशी रेकार्ड ही हैं। ऐसी बात नहीं है। बस इतना है कि रवीन्द्रनाथ, अतुलप्रसाद, काजी नजरूल इस्लाम के साथ एक अलग ही खिंचाव महसूस होता है।'

इस बार शायद वह कुछ ज्यादा ही गर्वबोध के कारण पार्थ के लहजे में उसकी वही परिचित बंकिम भंगिमा नजर आयी। उसने उसी लहजे में कहा, 'ऐसी बात है तो एक रवीन्द्र संगीत सुना दो—सुचन्द्रा ! सुरेन के अनुरोध पर। खासकर आज के दिन। ठीक है न सुरेन ?'

'सखि, मेरे गले में पहना दो मेरे साधों की बकुलमाला।' उसे यह गाना याद आ रहा था।

रात में सुहाग सेज पर उसे पलंग पर बिठाकर पार्थ ने कहा था, 'जरा ठहरो। मै तुम्हारा माली हूं तुम्हें फूलों के गहनों से सजाऊंगा।' सजाने के बाद कहा था विवाह से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हमारा मिलन है फिर उसने एक गीत की

तुम्हारे हर अग स लगकर रोता है मेरा हर अग

उसने उसे अपने करीब खींच लिया। अचानक खींचने से उसके हाथ का बैग जमीन पर गिरकर खुल गया था। बैग से उसे मिले उपहार बाहर निकलकर बिखर गये। सोने के उपहार। महंगे उपहार। उसमें रुपये भी थे। सुरेन ने सौ का नोट दिया था। कहा था, 'मनलायक कुछ खरीद लीजियेगा। उन सबको तकिये के नीचे रखकर वह लेट गयी थी। टन्न ! टन्न !

नींद टूटने से चौंककर जाग गयी सुचन्द्रा !

आश्चर्य ! ऐसी हालत में भी थकान मनुष्य को घेर सकती है ? आंखों में नींद उतर आती है ! वह वाकई सो गयी थी।

टन्न ! टन्न ! टन्न !

कितने बजे ? नौ या दस। इससे ज्यादा नहीं होगा। आंख लगने पर भी वह ठीक से सोयी नहीं थी। उसकी देह स्थिर थी। नींद भी। लेकिन मन् जगा हुआ था। उसका अतीत उसे सपने की तरह याद आ रहा था। उसके साथ ही उसे इस बात की भी हल्की प्रतीति थी कि कल सूर्योदय से पहले ही—। नींद में ही वह गहरी सास भी ले रही थी। लेकिन चंचलता, अस्थिरता सब शांत हो गया था।

टन्न ! टन्न ! टन्न ! टन्न !

सात या आठ ?

टन्न ! टन्न ! टन्न !

कितने हुए—दस या ग्यारह।

यह हिसाब लगाने की क्षमता भी सो चुकी थी। सपने जैसा ही या सपने मे ही विहंगिनी को याद आया—सुरेन इसी बीच उनके जीवन में चला आया था। आश्चर्य, यथार्थ भौतिकतावादी पथ पर चलते हुए अक्सर उससे भेंट होने लगी। सुरेन थियेटर के नाटक का सेट बनाता था। फिल्मों का भी सेट बनाता था। अक्सर वह उनके यहां आता। पार्थ भी उसे आमंत्रित करता था।

उसे पहले पता नही था। बाद में पता चला कि पार्थ अक्सर उससे रुपये उधार लेता था। एक बार मकान का किराया देते वक्त उसे यह बात पता चली। सुरेन जब घर में उसे नोट का बंडल दे रहा था, उस वक्त वह अचानक वहां पहुंच गयी थी। सुरेन खिसियानी हंसी हंसा था। पार्थ ने भी विचित्र ढंग से हंसते हुए कहा था, 'सुचन्द्रा, सुरेन जैसा यार अपना और कोई नहीं है। और वह तुम्हें कितना चाहता है, मैं बता नहीं सकता। पता है, पांच महीने का मकान किराया बकाया हो गया है। मकान मालिक ने मुकदमा करने की नोटिस दी है। मैंने सुरेन से कहा कि सुचन्द्रा के गहने गिरवी रखकर मुझे एक हजार रुपये दिलाने का तुरंत इंतजाम कर

गे नहीं तो मकान छोडना पडेगा मुकदमा करेगा सुरेन ने कहा म रुपये दूगा तुम सुचन्द्रा दवी के गहने गिरवी मत रखो दखो उसने हमे ये रुपये दिये हैं

उसे लगा जैसे वह बेहोश हो जायेगी

सुरेन ने कहा था, 'तुम भी क्या बढ़ा-चढ़ाकर कह रहे हो पार्थ ! रुपये मेरे हाथ मे हे। मैं कोशिश कर रहा हूं कि सुचन्द्रादेवी को प्लेबैक गाने का मौका मिल जाए।'

'यही करो सुरेन ! यही करो। अब मुझसे संभल नहीं रहा है।'

सुरेन ! उसकी सोच पर जैसे फिर विराम पड़ गया। उसकी तंद्रा कुछ छंट रही थी। काफी कुछ गड्ड-मड्ड हुआ जा रहा था। सब कुछ तारतम्यहीन हुआ जा रहा था। हा एक बात याद आ गयी। हिल्सा मछली। सुरेन हिल्सा मछली लेकर हंसते हुए फ्लेट में घुस रहा था। साथ में एक महंगी साड़ी भी थी।

इसी बीच एक नयी मोटरगाड़ी आ गयी थी। मेरून रंग की।

उस गाड़ी में वह और सुरेन सवार थे। गाड़ी चल रही थी। सुरेन ने नयी गाड़ी खरीदी थी। वे लोग पिकनिक मनाने डायमंड हार्वर जा रहे थे। पार्थ वहां पहले ही चला गया था।

सुरेन कुछ उद्विग्न नजर आ रहा था। वह लगातार सिगरेट पी रहा था। और बार-बार पूछ रहा था, 'बताओ तुम्हें यह गाड़ी कैसी लगी ?'

उस वक्त दोनों की निकटता उन्हें 'तुम' तक ले आयी थी।

उसने कहा था, 'बहुत बढ़िया। काफी सुंदर है। लेकिन तुमने अचानक गाड़ी क्यो खरीद ली ?'

'क्यों खरीदी ?'

'हां क्यों ?'

'समझ लो आज के लिए। तुम्हारे लिए। '

'मै समझी नहीं।'

'तुमने कहा था, 'डायमंड हार्बर में पिकनिक करने की इच्छा हो रही है और वहां पर मोटर से जाने की इच्छा है। मैंने कहा था, ठीक है इंतजाम करूंगा।'

'हां, तुम्हारे किसी बड़े क्लाइंट ने अपनी फर्म की गाड़ी देने के लिए कहा था।'

'हां, उसने देने के लिए कहा जरूर था पर बाद में अचानक उसने इन्कार कर दिया। अब ऐसी हालत में तुमसे किया मेरा वादा बेकार चला जाता। तब मैंने यह गाडी खरीदी। कुल छः महीने पुरानी है यह गाड़ी। मैंने इसे नये के दाम पर ही खरीदी हे।'

उसने चकित होकर उसकी ओर देखा। उसने क्या देखना चाहा था ? अब यह बात तो उसे याद नहीं। लेकिन ऐसी स्थितियों में लोग जिस तरह देखते हैं, उसने

भी उसी तरह देखा था

सुरेन ने हंसते हुए पूछा, 'यकीन नहीं आ रहा है ?'

जवाब में वह हंसते हुए बोली थी, 'इसमें यकीन न आने की क्या बात है ?'

सुरेन ने बड़े हल्के से अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया। उसने अपना हाथ नही हटाया। जो आदमी उसकी खुशी के लिए एक गाड़ी खरीद सकता है, उसे थोड़ा प्रसाद न देना अन्याय होता। इसके अलावा सुरेन का रुतबा भी बड़ा था। उसके पास पैसा था। वह गंभीर प्रकृति का व्यक्ति था। व्यक्तित्व संपन्न था। उसके सामने वह खुद भी अपने को उससे कमतर समझती थी। उपकारी, उपकृत के संबंध के अलावा भी और कुछ महसूस होता। उम्र में बड़ों के प्रति जो सहज गुरुत्व होता है, श्रेष्ठत्व होता है, वही उसमें भी था। अचानक वह कुछ प्रगल्भ हो उठी थी। अपने सुरीले कंठ से वह गुनगुनाने भी लगी थी।

उस दिन ही परिणति चरम में पहुंच गयी थी। डायमंड हार्बर में निर्दिष्ट स्थान मे तगड़ा आयोजन था। मगर पार्थ वहा नहीं था। वह एक चिट्ठी छोड़कर ट्रेन से कलकत्ता चला गया था। चिट्ठी में लिखा था, एक जरूरी काम से कलकत्ता जाना पड रहा है। तुम लोग मेरे लिए परेशान मत होना पिकनिक के मजे उड़ाना।'

आश्चर्यजनक रूप से परिपूर्ण और सामयिक रूप से सम्पूर्ण वह आनंद सुरेन के आत्म-समर्पण से हुआ। आज इस वक्त भी उसे लगा जैसे वह शबरी की तरह उसी की प्रतीक्षा कर रही थी। सुरेन के आत्म-समर्पण की।

हां, सुरेन ने ही आत्म-समर्पण किया। उसने नहीं। सुरेन ने कहा था, 'किसी शयर ने कहा है कि अपने प्रेमिका के होंठों के बगल के तिल के लिए मैं समर-कद-बुखारा भी दान कर सकता हूं। मैं तुम्हारी इस सुंदर मुस्कान के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर सकता हूं।'

प्रगल्भा सुचन्द्रा खिलखिलाकर हंस पड़ी। बोली, 'लो पकड़ लो। तिल नही, तिल समेत प्रयेसी को। लेकिन अगर तुम्हारे दोस्त को पता चल जाए ?'

सुरेन ने कहा, 'तो क्या ?' उसके चेहरे पर रहस्य-भरी मुस्कान छा गयी।

बाद में उसे पता चला था, पार्थ ने उसे सुरेन को बेच दिया था। तलाक की सहमति देकर पत्र लिख दिया था। इसके अलावा एक चिट्ठी भी लिखी थी। उसमे लिखा था, 'अपना सारा दावा छोड़कर सुचन्द्रा को तुम्हें सौंप रहा हूं। एवं इसके बदले मे मैंने तुमसे रुपये लिये हैं।'

वह बेहद आतंकित और शंकित हो गयी थी।

सुरेन ने इस बार मिन्नत करते हुए उसे पुकारा--सुचन्द्रा !

उसने कहा, 'नहीं।'

सुचन्द्रा यह ऐसी कोई बात नहीं है

तुमने मुझे खरीदा है मैं तुम्हारी खरीदी हुई बांदी हूं

मैं उस कागज को फाड़ देता हूं यकीन मानो मैंने पार्थ को यह सब लिखने के लिए नहीं कहा था। उसने रुपये मांगे थे। उसे मैंने तीन हजार रुपये दिये हैं। उसने कुछ रुपये और मांगे। साथ ही यह चिट्ठी भी लिख दी।'

'उसे फाड़ो मत, मुझे दे दो। मैं इसके लिए तुम्हें हैंडनोट लिख देती हूं।'

'तुम्हारे चरणों का सौगंध सुचन्द्रा ! यकीन मानो मैं तुम्हारा गुलाम हूं।'

उसका गंभीर चेहरा उस वक्त बेवकूफों जैसा नजर आ रहा था। वह घुटनों के बल बैठकर वाकई उसके चरण पकड़ने को आगे बढ़ा। सुचन्द्रा को हंसी आ गयी। लेकिन इसके बावजूद उसने बेवकूफों की तरह उसे हैंडनोट लिख दिया।

सुरेन के बाद फिर वह भवेश की हुई।

पार्थ की तरह सुरेन ने भी भवेश को खुद आमंत्रित किया था। परिचय कराते हुए कहा था, 'यह मेरा गहरा दोस्त है भवेश राय। नाटकों की दुनिया का बहुत बड़ा व्यक्ति। मैनेजर, एक्टर, मेरे—'

दूसरे कमरे में टेलीफोन की घंटी बजने लगी थी। उसने खीझकर कहा, 'ओफ'। इसके बाद ही बोला, 'अरे, भारत फिल्म्स वाले फोन करने वाले थे। अभी आता हूं।' कहकर वह दूसरे कमरे में चला गया।

भवेश थियेटर का व्यक्ति था। उसके काफी साल थियेटर की दुनिया में बीते थे। वह खूबसूरत सुचन्द्रा को एकटक देख रहा था, शायद मन ही मन सोच रहा था कि नाटक में नायिका के रूप में यह कैसी लगेगी ?

शाम तो रोज ही होती है। वह मनोरमा है। लेकिन जिस दिन सूर्यास्त के वक्त शाम अपने चेहरे पर मेघ का प्रलेप लगाती है, उस दिन सूरज की लाल किरणों से उसका चेहरा होली की रंगिनी नायिका की तरह नजर आने लगता है।

सुरेन उस समय दूसरे कमरे में फोन पर बातें कर रहा था। सुचन्द्रा इस कमरे मे भवेश को एकटक अपनी ओर देखते हुए पाकर अस्वास्ति महसूस कर रही थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि वह क्या कहे या क्या करे। क्या वह अपना घूंघट थोड़ा खींचकर इस बात का इशारा कर दे कि आप इस तरह से मुझे मत देखिए ? या कह दे कि इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। मगर उसने कुछ और ही कहा था। बड़ी प्रगल्भता से अपने को थोड़ा संभालकर वह बोली थी, 'मैं सुरेन की विवाहिता स्त्री नहीं हूं।'

भवेश को इस बात से चौंकने की जरूरत नहीं थी। वह सुरेन को जानता था। सुरेन उसे भले ही कुछ न बताए मगर इस तरह अचानक एक फ्लैट लेकर उसमें सुचन्द्रा को लाकर एक साथ रहने के पीछे ही सारी बातें स्पष्ट थीं जबकि सुरेन

का अपना घर था बीवी थी बाल बच्चे थे अचानक गाडी खरीदने के पीछे भी उसे कुछ ऐसा ही सदेह भी हुआ था। इसलिए इस वक्त उसके चौकने का कोई कारण नही था। इसके बावजूद उसने विस्मयभरी दृष्टि से ही देखा था। यह औरत तो मामूली औरत नहीं है।

भवेश उसे बड़े विस्मय से देख रहा था। सुचन्द्रा कुछ और भी प्रगल्भ हो गयी। उसने कहा, 'मुझे एक दिन अपना थियेटर दिखाइयेगा ?'

'जरूर ! सिर्फ एक दिन क्यों, नाटक खेले जाने वाले सभी दिन आइए। आपके लिए एक बाक्स रिजर्व रहेगा।'

सुचन्द्रा ने बड़े कौतुक से कहा था, 'यह भी बुरा नहीं रहेगा।'

'आप एक काम कीजिए, और अच्छा होगा।'

'क्या काम ?'

'आप खुद नाटक कीजिए। आपने अभी कहा कि आप सुरेन की विवाहिता स्त्री नहीं हैं। आप बेहद खूबसूरत हैं। आप जिस दिन स्टेज पर उतरेंगी आप उसी दिन नाटकों की दुनिया में अपना सिक्का जना लेंगी।'

'सचमुच ?'

सिर पर मौत सवार होने के बावजूद तंद्राच्छन्नता के बीच भवेश के साथ पहली मुलाकात की याद उसे बेहद मधुर लग रही थी। सारी बातें सारी घटनाएं इस वक्त भी उसे आश्चर्यजनक रूप से स्पष्ट याद थीं।

उसे काजी मजरूल इस्लाम का वह गीत याद आया—अतीत की स्मृति को कोई भूल नहीं पाता, कोई भूल जाता है।' यह गीत उसके लिए आज भी ताजा है। मन की रसना में स्वाद अभी तक बना हुआ था। वह भवेश से खिलवाड़ करने लगी थी।

उसने गर्दन टेढ़ी करके बांकी चिंतवन से पूछा था, 'सचमुच ?'

उसे तो पता ही था कि वह नाटक कर सकती है।

भवेश ने कहा था, 'मैं गारंटी दे सकता हूं।'

उसने और भी कौतुक से पूछा था, 'क्या गारंटी ?'

'स्टेज पर तीन साल का कांट्रेक्ट। पहले साल तीन शो, उसके बाद चार शो, तीसरे साल पांच शो।'

अपने होंठों को मोहक भंगिमा में टेढ़ी करके कुछ देर तक अपनी गर्दन हिलाते रहने के बाद उसने कहा था—उं-हूं !

'उहूं क्यों ?'

'इस बाजार में पता नहीं यह कितने फायदे का होगा ? जात जायेगी मगर पेट नहीं भरेगा।'

'कितना चाहिए—चार सौ, पांच सौ, छह सौ ?'

तब तक सुरेन लौट आया था उसने पूछा यह पांच छह सौ की क्या बात हो रही है

'सुचन्द्रादेवी को नाटकों में काम करने का ऑफर दे रहा हूं।'

'नाटक में ?'

'हां, तुम्हें आपत्ति है ?'

'नहीं, कम से कम तुम्हारे नाटकों में नहीं।'

भवेश के चले जाने के बाद सुरेन ने कहा था, 'भवेश के नाटक इन दिनों खूब चल रहे हैं। आदमी भी अच्छा है। उसके साथ नाटक करोगी ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'नहीं।'

'तब तुम उसे ऐसा क्यों कह रही थी ?'

'यूं ही। समझ लो मजाक कर रही थी।'

'मजाक कर रही थी ?'

'हां। उन्होंने जिस तरह प्रस्ताव रखा, मैंने भी वैसा ही जवाब दिया। उन्होंने कहा, मेरे नाटक में काम कीजिए। मैंने पूछा, तनख्वाह क्या देंगे ? बस, मजाक ही हो रहा था।'

सुरेन ने कुछ नहीं कहा।

दूसरे सप्ताह वह सुरेन के साथ थियेटर देखने गयी। नाटक तो खास पसंद नहीं आया, लेकिन भवेश अच्छे लग गये।

भवेश ग्रीन रूम में बैठे हुए थे। भवेश नाटककार अभिनेता थे। खलनायक का भी अभिनय कर चुके थे। नाटक के मैनेजर तो थे ही।

नाटक के सभी कलाकार उनसे बेहद डरते भी थे, इज्जत भी करते थे। भवेश खुद भी अच्छे कलाकार थे। इन सबके बावजूद नाटक बेकार होने के कारण देखने मे मजा नहीं आया। नाटक की चमक दूसरे साल आयी। भवेश ने नया नाटक तैयार किया। उन्होंने खुद नाटक लिखा, सुरेन ने सेट और दृश्य बनाये, कपड़ों की डिजाइनिंग की। रिहर्सल से लेकर नाटक प्रदर्शन के दिन तक हर शाम को और आखिर के पांच-छह दिन तो वह सुबह-शाम वहां मौजूद रही। ऑडिटोरियम में उसने पहली कतार में बैठकर नाटक देखा था। उसकी बगल में आकर कभी सुरेन बैठता तो कभी भवेश। कभी-कभी वे दोनों ही रहते। कभी-कभी आशा भी आकर बैठ जाती। आशा को सुचन्द्रा अच्छी लग गयी थी। नाटक की दोनों बड़ी अभिनेत्रियां थोड़ी घमंडिन थीं। लेकिन वे भी बीच-बीच में आकर बातें कर जातीं। भवेश हीरोइन के रूप में एक नयी लड़की लाये थे। वह देखने में काली जरूर थी लेकिन उसका

अभिनय देखने क बाद लगा उससे ज्यादा सुदरी कोई हो ही नहीं सकती थी।

पहले दिन ही नाटक हिट हो गया। भवेश ने शानदार अभिनय किया। दर्शको ने उस नाटक की हीरोइन पूर्णिमा की खूब प्रशंसा की। नाटक खत्म हो जाने के बाद वह सुरेन के साथ भीतर जाकर भवेश को बधाई दे आयी।

भवेश ने पूछा, 'कैसा लगा ?'

'बहुत खूब !'

'बस ?'

'और क्या कहूं ? अपूर्व—कहने पर आपको खुशी हो तो यही कहती हू।'

'भवेश ने कहा, 'नहीं, अगर ऐसा नहीं लगे तो सिर्फ कहने से क्या होगा।'

सुरेन ने कहा, 'भवेश मैं कहता हूं कि यही तुम्हारा श्रेष्ठ नाटक है। यह नाटक खूब चलेगा।'

भवेश ने कहा, 'तुमने सेट भी जबर्दस्त बनाया है। मैं खुले दिल से तारीफ कर रहा हूं। सुनो, तुम अपने रुपये ले लेना।'

'कब ?

'किसी भी दिन, जब नाटक का दिन हो।'

सुरेन को काफी रुपये मिले थे। कितना—यह नहीं बताया था, मगर काफी मिले थे। स्टेज की प्रकाश व्यवस्था भी उसी की थी।'

आते समय भवेश ने अचानक कहा था, 'मैंने आपसे इसी नाटक की हीरोइन के लिए ही कहा था।'

उसने उस वक्त भी इन्कार कर दिया।

इस इन्कार का क्या मतलब था, वह खुद भी नहीं समझ पायी थी। लेकिन वह नाटक अच्छा था। मगर सुचन्द्रा को यह कहने की इच्छा नहीं हुई। भवेश मैनेजर जेसे एक दिन में ही अचानक बेहद महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गया। सुरेन की चमचागिरी उसे पसंद नहीं आयी। भवेश को बेमतलब ही इन्कार करके उसे खुशी ही हुई।

सुरेन से उसका झगड़ा इसी बात पर हुआ।

झगड़ा पहले भी होता था लेकिन उसे झगड़ा नहीं कहा जा सकता। यह झगडा तो अचानक बिल से निकले सांप के फन फैलाने की तरह ही हुआ था। यह बात उस नाटक के प्रथम प्रदर्शन के दो महीने बाद की है।

टन्न ! घंटा बजा। गुमटी का बार्डर घंटा बजाकर समय की सूचना दे रहा था। टन्न ! एक।

इसके बाद ? इस घंटे की आवाज से तंद्रावस्था में भी अतीत की स्मृति की निरतरता में बाधा पड़ गयी। उसने घंटे की ओर ही कान लगा दिये। एक-एक करके एक-दो-तीन-चार बजते जायेंगे। लेकिन एक की गिनती के बाद सुचन्द्रा आगे

इतजार ही करती रही एक के बाद दो तो नहीं बजा फिर

एक। सिफ एक। मतलब एक बज गया। ग्यारह-बारह कब बज गये सुचन्द्रा को पता नहीं चला। घंटे की आवाज उसके कानों में नहीं गयी ! उसे सुनायी नही पडा।

तब क्या वह कुछ देर के लिए वाकई सो गयी थी ?

हां, बाहर से सो गयी थी, मगर उसका अंतर्मन जगा हुआ था। अतीत की बाते अतरात्मा की नजरों से चलचित्र की तरह गुजर रही थीं।

एक बज गया। अब और कितना वक्त बचा है ?

दो-तीन-चार-पांच। चार घंटे। सुचन्द्रा उठकर बैठ गयी। उसने एक गहरी सास ली। उसके अंग जैसे अकड़ गये थे। इस वक्त उसे न रुलाई आ रही थी न दु ख हो रहा था, बस एक उद्वेग था।

जेल की किसी दीवार पर बैठा उल्लू बोल रहा था।

उसका मन अब संवेदनाहीन हो चुका था, उसने जो कुछ भी किया था, जो घट चुका था उसके लिए भी उसे कोई मर्मभेदी आक्षेप नहीं था। जो घट चुका था उसके लिए अब वह क्या करे। इस बात के लिए अब रुलाई नहीं आ रही थी। बस भीतर से एक गहरी सांस निकल पड़ी। काफी गहरी सांस। उसकी तकदीर में यही लिखा था तो वह क्या करे ? उसे बचाने के लिए भवेश ने कम कोशिश नहीं की थी। काफी बड़ा वकील उसने किया था—नाटक के कलाकारों को उसके पक्ष मे गवाही देने के लिए कहा था। गवाही दिलायी भी थी। सिर्फ आशा को छोड़कर सभी ने यह बात कही थी कि सुचन्द्रा कभी ऐसा काम कर सकती है, यह बात उनकी कल्पना से परे थी।

सुचन्द्रा की धर्मभीरू होने की बात भी उन्होंने उनसे कहलाई गयी थी। बस आशा ने ही इसे माना नहीं था। उसने अदालत से जूठे पान के प्रसाद वाला प्रसग कह दिया था। भवेश ने अपने वकील से जिरह करवाया था, 'भवेश मैनेजर के साथ तुम्हारा अंतरंग संबंध था—भवेश का सिर दर्द करने पर तुम सिर भी दबाती थीं। और सुचन्द्रा देवी के थियेटर में नौकरी करने के बाद से भवेश बाबू ने तुम्हें बुलाना बद कर दिया था। क्या यह बात सच नहीं है ?' उन्होंने यह भी पूछने के लिए कहा था—'भवेशबाबू के ज्वार-भाटा नाटक के पहले महीने—लगातार पांच सप्ताह तक सुचन्द्रा देवी नाटक देखने आयी थीं, क्या यह बात सच नहीं ?'

आशा ने कहा था, 'हां। लगातार पांच सप्ताह तक लगभग हर बार का शो उसने देखा था।'

'हर बार के शो से तुम्हारा मतलब ?'

'नाटक हर सप्ताह तीन दिन होता है। शनिवार, रविवार और बृहस्पतिवार

को। तीन दिनों में चार शो। रविवार को दो शो होता है। सुचन्द्रा पांच सप्ताह के बीस शो में करीब दस शो देखने आयी थी।'

'तुमने इसे लेकर अफवाह भी फैलायी थी कि सुचन्द्रा भवेश बाबू पर डोरे डालने के लिए आती है ?'

'हां, कहा था और यह सच भी है। सुचन्द्रा नाटक देखने अकेली ही आती थी। उसके बाबू, यानी सुरेन बाबू ने हम लोगों के नाटक 'ज्वार-भाटा', नाटक का सेट तैयार किया था। वे एक प्रकार से हम लोगों के स्थायी आर्टिस्ट भी हैं। 'ज्वार-भाटा' शुरू होने के बाद ही वे फिल्म के काम से मद्रास चले गये थे। सुचन्द्रा उन दिनों आकर थियेटर देखने के बहाने से चली आती थी, बॉक्स में बैठकर थियेटर देखती, नाटक खत्म होते ही ग्रीनरूम में चली जाती। मैनेजर भवेश बाबू के कमरे में बैठकर उनसे गप्पें लड़ाती, चाय पीती, ठहाके लगाती। मैं मैनेजर बाबू के कमरे में आती- जाती थी। उन्हें चाय वगैरह में ही पिलाती थी। वहीं खड़ी रहती। उनकी बातें सुनती थी। मैंने कोई अफवाह नहीं फैलायी थी। जो हकीकत था वही कहा है। ये बातें हम लोग समझ जाती हैं। इसमें गलती नहीं होती।'

वकील ने कहा था, 'हां, इस बात में शायद गलती नहीं होती हो। बल्कि शायद क्या, निश्चय रूप से जरूर नहीं होती होगी। लेकिन जिससे प्यार किया जाए अगर कोई उसे छीन ले तो दिल टूट जाता है और छीनने वाले के प्रति आक्रोश का अंत नहीं रहता। यह भी सच है।'

अदालत में बैठे लोग मुंह दबाकर हसने लगे थे।

आशा ने गुस्से में आकर कहा था, 'हां, यह भी सच है लेकिन इस लड़की का स्वभाव भी जैसा मैंने कहा, वैसा है।'

सुरेन ने भी उसे यह कहकर गाली दी थी, अपमान किया था। उसने झापड़ मारा था। आशा की बात सच थी। उसने झूठ नहीं कहा था।

हां—उसका स्वभाव वाकई ऐसा ही था। 'ज्वार-भाटा' नाटक के पहले दिन उसने भवेश बाबू को अकारण ही इन्कार कर दिया था।

वह इन्कार भले ही अर्थहीन रहा हो मगर देखा जाए तो उसका अर्थ बेहद गंभीर और अर्थ समृद्ध भी था।

भवेश मैनेजर ने बाद में उससे कहा था, उस इन्कार का अर्थ मैं ही जानता हूं। अरे बाप रे—थियेटर-नाटक का मैं भवेश चटर्जी—मुझे ही नकार दिया गया।'

सुरेन ने भी उसके इन्कार करने पर उसे ही जिम्मेदार ठहराया था।

सुरेन मद्रास चला गया—'ज्वार-भाटा' नाटक जिस दिन पहली बार खेला गया. ठीक उसके दूसरे दिन ही। सुचन्द्रा फ्लैट में अकेली रहती थी। घर में एक

नौकरानी थी वही सब कुछ करती थी सादा सुल्फ खाना-पकाना सब सुचन्द्रा सिर्फ खिडकी की सलाखें पकडकर खडी रहती थी नीचे सडक से गुजरने वाले आम लोगों को देखती। काम के नाम पर वह अपने कपड़े साफ करती, स्त्री करती। अपने को दूसरों से बेहतर वह समझ सकती थी। ऐसा सोचने का उसका अधिकार भी था।

पार्थ ने जिस दिन उससे हार मानकर उसे महारानी संबोधित करके उसका माली बनना चाहा था, उस दिन की तुलना में वह अब सौगुनी ज्यादा सुखी थी। सुरेन ने उसके लिए गाड़ी खरीदी थी, किराये पर फ्लैट लिया था, अपनी बीवी, बाल-बच्चों को छोड़कर वह उसका गुलाम बना हुआ था।

उसे याद है डायमंड हार्बर में सुरेन्द्र उसके पैरों को छूना चाहता था। और इस फ्लैट में ? पहले दिन उसे पलंग पर बिठाकर, उसके कदमों के नीचे बैठकर बडे आवेग से गाने लगा था। आज यह सोचकर हंसी आती है। ठीक उस क्षण हंसी नहीं आती। ऐसी अर्थहीन हास्यास्पद बेवकूफी उस वक्त जीवन की सबसे सुंदर चीज लगती है। उस वक्त तो सारी देह में अजीब कंपन होता रहता है, जूड़ा खुलकर बिखर जाता है। गले में माला डालकर उसे लहराने की इच्छा होने लगती है।

खिड़की से नाटक के पोस्टर पर उसकी नजर पड़ी थी। भवेश चट्टोपाध्याय के 'ज्वार-भाटा' के पोस्टर पर। इस युग का श्रेष्ठ नाटक। मुख्य कलाकार भवेश और नयी नायिका पूर्णिमादेवी।

अचानक क्या सोचकर वह कपड़े बदलकर सज-धजकर सीधे थियेटर हाल मे पहुच गयी। रिहर्सल के दिनों में सुरेन के साथ आने के कारण गेटकीपर से उसका परिचय हो गया था। उसे देखकर उन लोगों ने रास्ता दे दिया। वह सीधे ग्रीनरूम मे भवेश बाबू के कमरे में चली गयी।

'नमस्कार !'

'आप ! आइए ! आइए ! आइए !'

वह हमेशा से ही प्रगल्भ थी। उसने कहा, 'तीन बार 'आइए ?' जब मैं आ ही गयी तब तीन बार 'आइए' कहने की भला क्या जरूरत थी ?'

'मैं हजार बार कहने के लिए तैयार हूं ! आइए, आइए, आइए, आइए... ।'

उसने कहा, 'अब बस भी कीजिए।'

दोनों की सरस खिलखिलाहट से पूरा कमरा मधुरता से भर गया था। ठीक जैसे दोपहर के वक्त हवा के झोंके से खिड़की खुल जाने से कमरे में रोशनी भर जाए और नीद टूट जाए।

'बैठिए ! अचानक आप ? कोई परेशानी तो नहीं है ? सुरेन है नहीं ?'

'यही असुविधा है अकेली पड गयी हू सोचा चलकर नाटक देख आऊ

'बहुत अच्छा किया। जब भी आपको अकेलापन सताए, आप चली आया कीजिए। नाटक का दिन न होने पर आप मुझे खबर भिजवा दीजियेगा, मैं आ जाया करूंगा, चाय पीकर आपसे बातें करके मेरा भी वक्त कट जायेगा।'

बस यहीं से शुरुआत हुई। शुरू में यह बात बहुत अच्छी लगी। असाधारण रूप से अच्छी लगी।

महीने-भर में विचित्र रूप से इस घटना ने एक-दूसरा रूप धारण कर लिया। थियेटर के मालिकों से भवेश बाबू का एक मामूली-सी बात पर झगड़ा हो गया।

भवेश बाबू ने एक दिन नाटक की नायिका पूर्णिमादेवी को डांट दिया था। पूर्णिमा ने उनकी बात न मानकर अपने मन मुताबिक अभिनय किया था।

नाटक की नायिका बहुत गरीब लड़की थी। बेहद गरीब। वह गंदे फटे कपडे, पहनेगी। उन्हीं कपड़ों में वह पहली बार मंच पर आयेगी, नायक फटे कपड़ो के बावजूद उसके सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जायेगा। भवेश बाबू ने उसके लिए काले रंग के कपड़े चुने थे। ब्लाउज भी उसी रंग का था। अचानक उस दिन पूर्णिमा ने अपनी साड़ी पीठ और सामने सीने की तरफ कुछ ज्यादा ही फाड़ दी, शायद चरित्र को ज्यादा यथार्थवादी बनाने के लिए। ड्रेसर ने मना भी किया था—भवेश बाबू का नाम लेकर भी मना किया था, मगर उसने अनसुनी कर दी थी। पूर्णिया जैसा चाहती थी, वैसी ही वेश-भूषा में मंच पर चली आयी। सीने पर साड़ी फटी होने के कारण गेलरी में बैठे लोग सीटी बजाने लगे थे।

यह बात भवेश बाबू के कानों में जाते ही उन्होंने पूर्णिमा को बुलाकर उसे झिडकते हुए पूछा था, 'तुम्हें यह सब रियलिज्म किसने सिखाया ? बोलो !'

पूर्णिमा ने भी गुस्से में कह दिया, 'किसी ने सिखाया ही होगा। और वह भी बेवकूफ नहीं है।'

'हां ! महापंडित ! वह तो समझ ही रहा हूं। लेकिन यहां यह सब नहीं चलेगा। मै तुम्हें चेतावनी देता हूं।'

इस झगड़े में मालिक भी आ गये। उन्होंने समर्थन किया, 'नहीं, नहीं, यही ज्यादा बढ़िया है। पूर्णिमा ने जो किया, वह ज्यादा बढ़िया है।'

भवेश बाबू ने कहा, 'तब तो हकीकत में भिखारिन की फटी-गंदी साड़ी पहननी पड़ेगी। काले थान से पीस काटकर बनायी साड़ी पहनने की क्या जरूरत ! साथ ही निर्देशन में इस तरह की दखलंदाजी मैं बर्दाश्त नहीं करूंगा।'

इस घटना से तिल का ताड़ बन गया।

भवेश बाबू ने इस्तीफा दे दिया। प्रोपराइटर ने रातों-रात एक नये अभिनेता का इंतजाम किया। भवेशबाबू के साथ और भी कई लोग वहां से निकल आये।

उन्होंने एक दूसरा हाल किराये पर लेकर 'ज्वार भाटा' को ही करने का निर्णय करके सुरेन को मद्रास में तार कर दिया सुरेन तार पाकर चला आया

उसने सेट बनाने में दिन-रात एक कर दिया। उसके साथ ही नशे में ग्रस्त व्यक्ति की तरह काम से या यूं ही सुचन्द्रा भी भूवेश बाबू के आस-पास घूमने लगी। भवेश बाबू ने उसी दौरान उससे पूछा, 'आप नायिका का रोल करेंगी ? मैं उन लोगों को दिखा देना चाहता हूं।'

सुचन्द्रा के चेहरे पर विचित्र हंसी उभरी—'मैं ?'

'हां।'

'कर सकूंगी ?'

'सब हो जायेगा। ऐसा माहिर बना दूंगा कि पूरा कलकत्ता दीवाना बन जायेगा।'

'मुझे क्या देंगे ?'

'पांच सौ रुपये महीना, और—'

'और ?'

'और आपका गुलाम बना रहूंगा।'

'वह हंस पड़ी—'जरखरीद गुलाम ?'

'हां।'

'कितने दिनों के लिए ?'

'जीवनभर।'

'फिर राजी हूं।'

'सोच लीजिए।'

'सोच लिया। तैयार हूं। एकदम तैयार !'

उत्साहित होकर मैनेजर उसी वक्त सुचन्द्रादेवी का नाम नायिका के रूप में देकर बड़े-बड़े हर्फों में पोस्टर छपवाकर उसे पूरे कलकत्ता की दीवारों पर चिपकवाने के इंतजाम में लग गये। नाट्य-जगत में एक ऊंचे खानदान की नयी रहस्यमयी नायिका। बंग रंगमंच में नवीन चंद्रोदय !

घटना उसी दिन घट गयी।

भवेश बाबू जिस वक्त सुचन्द्रा से कागजात पर दस्तखत करा रहे थे, उस वक्त आशा सुरेन के पास बैठी थी। सुरेन अपना ब्रुश लेकर खड़ा चुपचाप उनकी बातें सुन रहा था। घर में लौटते ही सुरेन ने पूछा था, 'एक बार इजाजत लेने की जरूरत भी नहीं समझी ? कांट्रैक्ट पर दस्तखत कर दिया। मैं तो वहीं था।'

सुचन्द्रा की भौंहें सिकुड़ गयीं। उसने कहा, 'क्यों ? तुम्हीं ने तो पहले वाले थियेटर में जब नाटक की तैयारी चल रही थी, तब नायिका बनने के प्रस्ताव पर मेरे

इन्कार कर देने पर कहा था, आखिर दस्तखत करने में हर्ज ही क्या था ? कहा नही था ?'

'तुम इस तरह से ऐसा कर सकती हो, तब मैंने सोचा नहीं था।

'क्या ? इस तरह से क्या ऐसा कर सकती हूं ? क्या कर सकती हूं ?'

'प्रेम-प्यार।'

'प्रेम-प्यार ? मतलब ?'

दांत-मुंह भींचते हुए सुरेन ने उसके करीब आकर कहा, 'मतलब बदचलनी। भवेश मैनेजर के साथ इश्कबाजी। पता चला है कि मेरे मद्रास जाने के बाद से ही यह सब चल रहा है।'

यह सुनते ही सुचन्द्रा ने उसको एक थप्पड़ मार दिया।

सुरेन अपने बायें हाथ से उसका दायां हाथ पकड़कर दाहिने हाथ से सैंडल उठाकर उसे मारने लगा। साथ ही साथ कहता भी जा रहा था—कसबिन, रंडी, कुत्ती।

उसके मुंह से निकले ऐसे शब्दों की उसने आशा नहीं की थी। ऐसा कभी हो सकता है यह उसकी धारणा भी नहीं थी। सुरेन कभी इस तरह अपने पैरों से कुचलकर उसे धूल में मिला सकता है, यह उसके लिए अकल्पनीय था। वह तो कभी ऐसी बातें बर्दाश्त नहीं कर पाती थी। बर्दाश्त करना किसी के लिए भी संभव नही होना मगर उसकी बात कुछ और थी। अतीत में ऐसा कभी हुआ भी नहीं। वह उस पर आघात करने के लिए मौके की तलाश में था। भवेश मैनेजर के प्रसंग से मौका मिल गया।

सुरेन क्षण-भर के लिए रुका उसके बाद उसने फिर सैंडल उठाया था। लेकिन तभी भवेश उन दोनों के बीच आकर खड़े हो गये। महिषासुर के सामने दुर्गा के वाहन सिंह की तरह।

भवेश को सुरेन ने कहा था—उसने सुचन्द्रा को खरीदा है। पार्थ मुखर्जी—उस पंगु, अक्षम, संगीत विलासी से उसने उसे खरीदा है। पार्थ की लिखी चिट्ठी उसने निकालकर दिखायी भी थी। उसने भी अपने गहने तुरंत खोलकर फेंक दिया। सुरेन ने कुत्सित व्यंग्य से कहा, ये गहने उसी के दिये हुए हैं। उसने पार्थ को नकद चार हजार रुपये दिये थे।

भवेश ने उतने रुपयों का एक चैक भरकर कहा, 'यह लो।'

सुरेन ने कहा था, 'तुम्हारे साथ झगड़ा नहीं करूंगा।' तुम उसे ले जा सकते हो। तुम्हारे नाटकों से मुझे काम मिलेगा। उसने पार्थ की लिखी चिट्ठी-भवेश को दे दी सुचन्द्रा तब तक अपने व्यक्तित्व में लौट आयी थी उसने कहा था 'यह चिट्ठी नहीं चिट्ठी से आदमी नहीं बिकता सुचन्द्रा के लिए तो ऐसा सोचा भी नहीं जा

सकता। सुचन्द्रा ने इस बाबत जो हैंडनोट लिखा था, उसे लौटाओ।'

उसे लौटाने के बाद अपने उतारे हुये गहनों की ओर इशारा करके वह बोली, 'ये सब मेरे हैं। तुमने दिया जरूर था, मगर अब मेरे हो गये हैं। सिर्फ दो वक्त के खाने-कपड़े पर नौकरानी भी नही मिलती सुरेन ! सिर्फ खाना-कपड़ा और रहने लायक फ्लेट किराये पर लेकर दे देने से सुचन्द्रा को खरीदा नहीं जा सकता। यह बात मैं तुम्हारे मुह से ही सुनना चाहती हूं सुरेन ! बेहतर हो इन्हें उठाकर तुम्हीं मुझे दे दो।'

इसके बाद भवेश से कहा था, 'चलिए भवेश बाबू ! आप रहने के लिए मुझे एक कमरा तो दे ही सकते हैं।'

सुरेन ने कहा था, 'तुम इसी फ्लैट में रहो। जैसे रहती आयी हो वैसे ही रहो। मे अब फ्लैट लेकर क्या करूंगा। मैं अपने घर वापस जा रहा हूं।'

जाते समय अपनी अटैची लेकर सुरेन ने कहा था, 'क्या आज की घटना तुम भूल नहीं सकती ?'

उसने कहा था, 'नहीं। देर हो गयी है। काफी देर हो चुकी है।'

'अगर भवेश को कोई एतराज न हो ?'

'भवेश बाबू का एतराज ? वह हंस पड़ी। बोली, 'ऐसा सोचो भी मत। आखिरकार सुंद-उपसुंद दैत्यों जैसा हाल करना है ? इससे बेहतर है घर लौट जाओ। भवेश बाबू ने रुपये जरूर दिये हैं मगर उन्होंने मुझे खरीद लिया है, ऐसा वे जरूर सोच नहीं रहे होंगे। भवेश बाबू, क्या आप ऐसा ही सोच रहे हैं ?'

भवेश ने हंसते हुए कहा, 'बिल्कुल नहीं। सुचन्द्रा तुम्हें कौन खरीद सकता है ! तुम्हीं सबको खरीद लेती हो। मुफ्त में खरीद लेती हो।'

'मजाक नहीं भवेश बाबू, आपने जो रुपये दिये, उन्हें लौटाने की क्षमता मुझमें नही है। मगर इसे मैं बोझ नही बनाना चाहती—कहीं बाद में आप भी सुरेन न बन जाएं।'

सुरेन इसके बाद वहां रुका नहीं। वह सूट केस हाथ में लेकर बाहर निकल गया। उन दोनों ने उसके जाने की परवाह नहीं की। कमरे की खुली खिड़की से जिस तरह एक गौरेया बाहर आ-जा रही थी। यह घटना भी ठीक उसी तरह मामूली थी।

भवेश उसे मुग्ध होकर देख रहे थे। उसी तरह देखते हुए बोले, 'सुरेन बहुत मूर्ख है। उसने सोचा था, तुम खरीदी जा सकती हो।'

'खरीदी नहीं जा सकती, मुझे जीता जा सकता है।'

'उंहूं, यह भी संभव नहीं।'

उसने हंसते हुए कहा, 'अच्छा, अब मैं तुम्हें एक गाना सुनाती हूं सुनो।' सुचन्द्रा ने ही सबसे पहले भवेश को 'तुम' कहकर संबोधित किया था। एकदम सहज परिणति की भंगिमा में। एवं इसके लिए उसने किसी तरह का संकोच या

शर्म का प्रदर्शन नहीं किया था। न कोई नखरा किया था।

'सुनाओ !'

सुचन्द्रा ने काफी दिनों बाद अतुल प्रसाद का गाना गाया था--'अब और क्या कहू ?'....बेहद मधुर आत्म-समर्पण का यह गीत था। 'तुम सुख से रखोगे तो सुख से रहूंगी। दुःखी रखोगे तो वैसे भी रह जाऊंगी। तुम रुलाओगे तो रोऊंगी। हंसाओगे तो हंसूंगी।'....

गाना खत्म करके उसने पूछा था, 'बताओ, कैसा लगा ?'

भवेश ने कहा, 'तुम्हारे पार्ट में सोचता हूं, एकाधिक गाने भी डाल दूं। क्या राय है ? पूर्णिमा अच्छा नहीं गाती थी इसीलिए मैंने गाना नहीं डाला था। तुम गाओगी तो श्रोता मुग्ध हो जायेंगे।'

उसने कहा था, 'ठीक है, ऐसा ही करो।'

उनकी बात सच हुई थी। भवेश बाबू के नये स्टेज पर नाटक खूब जमा। खासकर नयी हीरोइन सुचन्द्रा का अभिनय, रूप-सौंदर्य और उसका मधुर कंठ। नाट्य रसिक समाज की हालत तो कुछ दिनों तक अफीम के खेत में खिले फूलों के आस-पास नशे में मंडराने वाले भौंरों की तरह हो गयी। जिसके कारण पुराने स्टेज मे 'ज्वार-भाटा' जैसा हिट नाटक फ्लाप होकर बंद हो गया। मामला मुकदमा भी खूब हुआ। उस स्टेज के प्रोपराइटर ने दूसरे स्टेज पर चलने वाले इस नाटक को बंद करवाने की यह कहकर कोशिश की थी कि उस नाटक को वह पहले से खरीद चुका है। मगर उससे कोई लाभ नहीं हुआ। भवेश मैनेजर नाटकों की दुनिया के पुराने आदमी थे और कायदे-कानून से परिचित थे। उन्होंने दावा करने वाली पार्टी के दावे का खारिज कराके अपने नये थियेटर में 'ज्वार-भाटा' नाटक को एकदम सुपरहिट बना दिया। वह नाटक बॉक्स ऑफिस पर एकदम खरा उतरा। सबसे ज्यादा चर्चा सुचन्द्रा की हुई थी। वह रातों-रात प्रसिद्ध हो गयी। उसके अभिनय की तारीफ तो हुई ही थी पर सबसे ज्यादा सराहना उसके कंठ की हुई थी। उसके गाने पर मुग्ध होकर किसी दर्शक कवि ने एक गुमनाम पत्र में उसकी प्रशंसा करते हुए एक कविता लिखकर भेजी थी।

--'तुम विहंगिनी हो !'

टन्न ! टन्न ! दो बज गये। उसका दिल धड़क उठा। नहीं घंटा बजना बंद हो गया। बजता कैसे--वह तो एक बजे के बाद से ही जगी हुई थी। अपनी दोनों आखे खोलकर जगी हुई बैठी थी।

अब तीन घंटे बाकी रह गये थे। कुछ मिनट कम या ज्यादा हो सकते है। उसका दिल घंटे की आवाज पर अचानक बड़ी तेजी से धड़क उठा था। उसने

अपने दिल पर हाथ रख दिया था उसका दिल अभी तक धड़क रहा था आह

ऊपर की खिड़की से उसने बाहर के आसमान की ओर देखा वहा अधेरा छाया हुआ था , चाद नहीं था , सितारे टिमटिमा रहे थे। वे अभी बुझे नहीं थे , आसमान का रंग गहरा नीला था—कालेपन के करीब। वह काला आसमान धीरे-धीरे फीका पड़ने लगेगा। नहीं—आसमान में प्रकाश का स्पर्श उस वक्त तक नहीं लगेगा। वह प्रकाश को देख नहीं पायेगी। आसमान में सूरज की किरणों को वह देख नहीं पायेगी। उसे एक गाना याद आ गया—

नीले आकाश मे रोशनी के इशारे पर
विहंगिनी पंख फैलाकर उड़ जाती है
दिगंत के आखिरी छोर पर। रोशनी के इशारे पर।।
विंग के इस व्याकुल रागिनी के प्रभाव से
पूरा आकाश अचानक कांपकर जग उठता है—
विहंग पुकारती है प्रिया को—आ जा !
अरी ओ, तू मेरे पास आ जा !!

मंच पर पहली बार प्रवेश करने वाले दृश्य में ही उसका यह गाना था। इस गाने के कारण ही उसके प्रशंसक ने उसे वह कविता लिखकर भेजी थी। भवेश मैनेजर बड़े व्यवहारिक थे। वे हर चीज का मूल्य समझते थे। उन्होंने इस कविता की उपेक्षा नहीं की थी। विज्ञापन में इसका इस्तेमाल किया था। एक दिन उन्होंने नाटक शुरू होने के बाद पहले दृश्य में ही दर्शकों के सामने इस कविता को पढ़कर सुचन्द्रा का नाम बदलकर विहंगिनी कर दिया।

विभा से सुचन्द्रा—फिर सुचन्द्रा से विहंगिनी !

न जाने कितने गुलदस्ते, कितनी चिट्ठियां और कितने मनुहार ! न जाने कितनी अश्लील कदर्य बातें। थियेटर के लोग अभिनय बढ़िया करते हैं, जब वे भले आदमी का अभिनय करते हैं तब साक्षात् स्वर्ग के रूप-रस का स्पर्श महसूस करा सकते हैं। लेकिन व्यक्ति के रूप में सभी तो अच्छे लोग नहीं होते।

उसके बारे में वे सब कैसी-कैसी बातें करते थे। वे अच्छी बातें नहीं होती थीं। नहीं। वह तो वैसी नहीं थी। जो उन्हें कहना हो कहें। जब वह वैसी थी ही नहीं। 'इस दुनिया में मिट्टी पर पत्थर पड़े रहते हैं, शीशे के टुकड़े पड़े होते हैं, शायद लोहे की कीलें भी पड़ी होती हैं—न जाने कितना जहर होता है, होता भी है—इसके बावजूद धरती से नर्म और कोई चीज नहीं होती, मिट्टी से ज्यादा मिठास किसी में नहीं होती, मिट्टी से ज्यादा मनोरमा और कुछ नहीं होती ' इस दुनिया में घटनाओं को आंखें और मन ही कुत्सित बनाती हैं

ओह, विहगिनी का पार्ट उसे अभी तक याद था।

उसके पास न जाने कितने लोग आये थे। दोनों हाथों से भरकर उपहार लाते थे। गहने, रुपये। ओह, वह भी एक विचित्र खेल था। उसे याद है, भवेश ने एक दिन ग्रीनरूम में आकर उससे कहा था, 'बाघ आया है।'

'बाघ ! उसके विस्मय की सीमा न रही।

उन्होंने एक गैर बंगाली व्यापारी का नाम बताते हुए कहा था—उसका लड़का। लड़के का शगल ही था सुंदर औरत और सुकंठी गायिका को खरीदना। सुचन्द्रा सुंदरी और सुकंठी दोनों ही थी।

यह सुनकर वह खुशी से भरकर तनकर बैठते हुए बोली, 'वाकई ?'

'हां ! खुद ही देख लो।'

उसके कहते-कहते ही एक नौकर भीतर एक गुलदस्ता ले आया। बोला, 'यह आपके लिए है। बॉक्स में बैठे एक सज्जन ने भिजवाया है। वे चले गये हैं।'

'सावधान रहना ! अब वह तुम्हारे घर आयेगा।'

यही हुआ भी। मगर वह सावधान नहीं हुई थी बल्कि उल्टे उसने उसकी बड़ी आवभगत की थी। कुछ दिनों तक वह उस धनी के लड़के के साथ खेल खेलती रही। इसके बाद एक दिन उस आदमी ने आना बंद कर दिया। वह एक दूसरी औरत के पास चला गया। मगर कहा था—डेंजरस वोमन !

यह खबर पाकर वह दिनभर हंसती रही थी।

भवेश के लिए, नहीं, भवेश के लिए कहना ठीक नहीं होगा—थियेटर के लिए उसने न जाने ऐसे कितने पैसे वाले लोगों से खेलते हुए उनकी अंटी ढीली करवायी थी।

उसके बाद के दोनों नाटक एक के बाद एक फ्लॉप हो गये थे। काफी नुकसान हुआ। बाजार में रुपये मिलने बंद हो गये। मरे घोड़े को चाबुक मारकर घुड़दौड़ की प्रतियोगिता नहीं जितायी जा सकती। सिर्फ विहंगिनी के भरोसे ही नाटक सफल नहीं हो सकता ! भवेश बूढ़ा हो गया है। रोगी घोड़ा। और आशा ? वह भी बूढ़ी हो गयी है। नाटक भी भवेश का लिखा हुआ है ! अब वह नहीं चलेगा।

भवेश ने चिंतित होकर कहा, 'आखिरकार नाटक बंद कर देना पड़ेगा ?'

उसने कहा था, 'तुम कहते हो कि रुपया नहीं मिलेगा ?'

'यही तो देख रहा हूं। बूढ़े ने अपनी मुट्ठी कसकर बंद कर रखी है। मतलब उस बूढ़े महाजन ने। उसका यही व्यवसाय है। रुपये के लेन-देन का कारोबार करता है। सामान गिरवी रखने का कारोबार। मियाद पूरी होने पर बंधक रखी चीज वह हड़प लेता है इसमें चूक नहीं होती इसे लेकर मामला-मुकदमा नहीं चल सकता कोई प्रमाण ही नहीं रहता वह इसी तरह गिरवी रखकर नाटक वालों को रुपये देता था

हर सप्ताह नाटक देखने आता और अपने रुपये ले जाता आखिरी नाटक के तीन चौथाई रुपये वसूल नहीं हुए थे नाटक चला नहीं बंद हो गया इधर स्टाफ की तनख्वाह भी बकाया पडी थी

भवेश ने नया नाटक लिखा था—भावुकता से भरा नाटक। नायिका कम उम्र की सुंदरी थी जो प्रेम में पड़कर आपना घर-बार छोड़कर अपने प्रेमी के साथ निकल पड़ी थी। वह अपनी सारी तकलीफों को नजर-अंदाज करके उसके साथ रह रही थी। काफी कुछ 'उदय के पथ पर' फिल्म की तरह कहानी थी—लेकिन 'उदय के पथ पर' जहां खत्म होता था, यह नाटक वहां से शुरू होता था। इसके बाद पैसे वाले के षड्यंत्र के कारण नायक को जेल हो जाती है। नायिका अपने गोद के बच्चे को लेकर सड़कों पर भटकती है। दुर्भाग्य से उसके बच्चे की भी मौत हो जाती है। वह लड़की पागल होकर सड़कों पर अपने स्तन के दूध को उसे पिलाने के लिए भटकती हुई पुकारती रहती है—मुन्ना, ओ मुन्ना ! नाटक के अंत में उसका नायक से मिलन हो जाता है। इसी नाटक के लिए उसे रुपयों की जरूरत थी। लेकिन बूढ़े महाजन ने रुपये देने से इन्कार कर दिया था।

विहंगिनी ने कहा, 'मुझे एक बार उसके पास ले चलो। देखूं—क्या कहता है।'

भवेश ने हंसते हुए कहा, 'तुम जाओगी ?'

'तुम्हें कोई आपत्ति है ?'

'मुझे क्यों होगी ?'

'होनी नहीं चाहिए, फिर भी होती है।'

'मैं सुरेन नहीं हूं।'

'हां, तुम तो भवेश हो।'

'मैं नाटककार हूं....।'

'खांटी ! इसमें संदेह नहीं।'

'तब बताओ कब चलना है ? उस बुड्ढे के पास !'

'अभी चल सकती हो।'

'इस असमय में—शाम के वक्त—'

'क्या फर्क पड़ता है। रुको मैं आती हूं।'

पंद्रह मिनट बाद वह अपना शृंगार करके वापस लौट आयी। भवेश उसे देखकर चौंक गया। बोला, 'यह क्या किया है ?'

'क्या किया ?'

'इतना शृंगार ?'

उसने हंसकर कहा, 'रणसज्जा है यह !'

'ठीक है चलो ! तुम्हारा रणकौशल देखूं।'

वह कौशल उसने दिखलाया था। मधुर कंठ से बड़े संकोच से उसने बातों की शुरुआत की थी। बातें भी वह गर्दन झुकाकर कह रही थी। बूढे महाजन रूढ़ भाव से कहते-कहते अचानक रुक गये और चकित होकर बोले, 'अरे, तुम रो रही हो क्या?'

उसने गर्दन झुकाये सिर हिलाकर कहा—नहीं।

वृद्ध बोली, 'रोती भी हो और कहती हो, नहीं। अपना चेहरा उठाओ। मेरी ओर देखो।'

उसने चेहरा उठाया था। उसकी आंखों में पानी था।

वृद्ध ने कहा, 'मैंने ठीक पकड़ा।'

उसने फिर आंखें नीची कर लीं। भवेश उसकी बगल में ही बैठे थे। उन्होने चुपके से उसे चिकोटी काट ली।

इस तरह की काफी बातें हैं। ऐसे कितने खेल, कितने कौतुक, कितने हंसी-मजाक, कितने गीत। इनमें अगर कदर्मता ढूंढी जाए तो वह भी मिलेगी, अन्याय मिलेगा, अधर्म मिलेगा, अश्लीलता भी ढूंढ़ी जाए तो मिलेगी। मिल सकती है। लेकिन मिलने पर भी वह सत्य नहीं है। एकदम नहीं।

ओह, वह उस दिन वाकई लड़ाई जीतकर लौटी थी। जाते समय उसने भवेश से मजाक में कहा था—रणसज्जा ! उसने झूठ नहीं कहा था।

भवेश उस दिन उसे शाम को दक्षिणेश्वर मंदिर ले गये थे। जाने के पहले उसने अपने कपड़े बदलकर पुजारिनी का बाना पहन लिया था। लाल पाड़ गरद की साडी ब्लाउज पहनकर माथे पर एक लाल रंग की चटक बिंदी लगा ली थी। उसने तीन बार अपने हाथ धोये थे। सिर पर गंगाजल छिड़का था। मन में किसी प्रकार का उहापोह नहीं था। उसे याद है, देवी के मंदिर के बरामदे मे जब वह हाथ जोड़े खडी थी, उसके मन में जरा भी ग्लानि नहीं थी।

नहीं उसने रंचमात्र भी ग्लानि नहीं अनुभव की थी। बल्कि—। बल्कि आनद ही अनुभव किया था। फूल-माला, धूप और दक्षिणा में उसने पूरे सोलह रुपये खर्च कर दिये थे। परमहंस रामकृष्ण के कमरे में जाकर बड़े भक्तिभाव से वह आंख मूंदकर ध्यान मुद्रा में बैठ गयी थी। जब वह वहां से आ रही थी—तब उसे उस नाटक की सफलता के बारे में पूरा विश्वास था। परमहंस का हंसता हुआ चेहरा उसके ध्यान मे उसे और ज्यादा प्रसन्न, माधुर्यमय और करुणापूर्ण नजर आया था।

उसे याद है, घर लौटकर उसे एक चिट्ठी मिली थी। सबसे पहले उसने उसे भेजने वाले का नाम देखा था—पार्थ मुखर्जी ! उसने वह चिट्ठी पढ़ी नहीं। उसे मुट्ठियो में भींचने के बाद उसकी चिंदियां बनाकर उसे फेंक दिया था।

टन्न टन्न टन्न

तीन बज गये घंटे की हर गूज के साथ उसका शरीर सिहर उठा हर सिहरन

के साथ वह बेहद खाली और कमजोर महसूस करने लगी थी सिर म भारीपन महसूस होने लगा था लगता था उसके सीने का किसी ने रस्सिया स जकड दिया था मन ही मन शायद उसने खुद स या किसी काल्पनिक व्यक्ति से कुछ कहन की कोशिश की। बात करने के लिए उसने अपना मुंह भी खोला लेकिन सांस की आवाज या मौन हाहाकार के 'हा' की आवाज के अलावा उसके गले से कोई शब्द नही निकला।

जेलखाने के ऊपर आसमान से एक उल्लू बोलते हुए उड़ गया। दूर, शायद गगा के किनारे कोई सियार बोल रहा था।

तीन बजने के साथ रात का तीसरा प्रहर बीत गया। बस एक प्रहर रह गया था। नहीं, तीन के बाद एक प्रहर यानी तीन घंटे बाद छह बजे होगा। लेकिन छह बजे तक तो उसे जिंदा रहना नहीं था। उसकी आयु पांच बजे तक ही थी। मतलब दो घंटा।

उसकी देह के बीच उसकी आत्मा जैसे बेहद उद्वेग और बेचैनी से छटपटा रही थी।

हे भगवान् !

नहीं। वह भगवान् से क्या कहेगी ? उसे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसे न अब कुछ मांगना था न कोई शिकायत थी। सिर्फ—बस वह यह पूछना चाहती थी कि उसने ऐसा काम क्यो किया ? क्यों ? इसे कराया तो तुमने था। तुम्हारे अलावा और कौन हो सकता है ? एक उस्तरे से उसका गला मैंने इतनी सहजता से कैसे रेत दिया, तुम्हीं बताओ ! किस बात का गुस्सा था ?

पहले-पहले उसने उनका जरूर उपहास किया था। वह ऐसे सब अवतारी लोगों को मानती नहीं थी। ये सब पाखंडी होते हैं, ये लोगों को बेवकूफ बनाते हैं, रुपये और सुंदर औरतों के कारण ही ये खुद को अवतार घोषित करते हैं, उसके मन मे इनके प्रति ऐसी धारणा पैठी हुई थी। आज के जमाने में पढ़े-लिखे ग्रेजुएट, एम. ए. पास अवतार भी कहीं-कहीं नजर आने लगे हैं। हर जगह रट जाता है कि भगवान् का अवतार हुआ है। समारोह होने लगता है। रोज दरबार लगता है, भजन होते है, भक्तों की भीड़ लगी रहती है। इसके बाद वह एक दिन पुलिस द्वारा पकड़ा जाता हे, या तो किसी को ठगने के आरोप में या फिर सुंदरी युवती को फुसलाकर भगाने के आरोप में।

आनंद ठाकुर के बारे में भी वह ऐसा ही सोचती थी। भवेश भी ज्यादा यकीन नही करते थे, फिर भी थोड़ा बहुत करते थे। मगर थियेटर के काफी लोग आनद ठाकुर के भक्त या शिष्य बन गये थे।

इन्हीं सब में आशा भी थी उसकी प्रशसा खत्म ही नहीं होने को आती थी

नये नाटक के प्रदर्शन के दिन आशा ने एक चंपा का फूल लाकर भवेश को देते हुए कहा था, 'ठाकुर ने यह फूल भिजवाया है। इस फूल को एक नये रेशमी कपडे के टुकड़े में बांधकर स्टेज के किसी कोने में लटका दें। ठाकुर ने कहा है, तुम लोगो का नाटक खूब चलेगा आशा !'

यह बात सच हुई थी। नाटक वाकई जोरदार चला। मगर इसका कारण क्या था यह किसी ने सोचा नहीं। सभी ने सारी चीजों को ही सच मान लिया था। नाटक मे अभिनय जानदार था--अति नाटकीय होने के बावजूद जानदार था। टीम वर्क अच्छा था, यह भी सच था। इसके साथ यह भी सच था कि विहंगिनी हीरोइन का अभिनय भी बहुत बढ़िया था। नाटक के बारे में लोग चाहे कुछ भी कहें मगर कुल मिलाकर नाटक बहुत प्रभावशाली था। सुचन्द्रा ने दक्षिणेश्वर जाकर अपनी ध्यानमुद्रा मे परमहंस का जो एक अनोखा प्रसन्न मुखमंडल देखा था, उसके कारण ही यह सफलता मिली थी, इस सत्य को भी कौन अस्वीकार करता ? इतने सारे सत्य के बाद आशा के उन गुरुजी के आशीर्वाद को भी कोई झूठ क्यों कहता ? आज के जमाने क ऐसे स्वयंभू गुरुओं पर सुचन्द्रा को जरा भी यकीन नहीं था फिर भी वह कह नही पायी थी कि वह झूठ है। भवेश मैनेजर का भी यही हाल था।

उस दिन नाटक का पचीसवां प्रदर्शन था। गुरुजी उस दिन नाटक देखने आये थे। उस दिन शनिवार था। नाटक का चौबीसवां प्रदर्शन बृहस्पतिवार को हुआ था। आशा ने आकर भवेश बाबू से कहा था, 'मैनेजर साहब, शनिवार को तो पचीसवा प्रदर्शन होगा। जयंती वगैरह का आयोजन तो पचासवें प्रदर्शन से पहले होता नही। बेहतर हो आप गुरुजी को शनिवार को नाटक दिखाने के लिए आमंत्रित कीजिए। आपको याद ही होगा उन्होंने आशीर्वाद के रूप में चंपा का फूल भेजा था। वे भी कह रहे थे, तुम लोगों का नाटक तो बढ़िया चल रहा है। मैने ही उनसे कहा था।'

भवेश मैनेजर ने कहा, 'यह तो अच्छी बात है, उन्हें आमंत्रित करो। या फिर खुद जाकर ले आओ।'

'इसके लिए तो आपको खुद ही जाकर आमंत्रित करना पड़ेगा।'

'ठीक है, मैं ही जाऊंगा।'

आशा के चले जाने के बाद उसने भवेश से पूछा था, 'तुम वाकई जाओगे ?' स्वागत समारोह करोगे ?' भवेश ने कुछ सोचकर कहा, 'समारोह क्या ? गुलदस्ता भेट कर दूंगा। मगर जाकर दावत तो देनी ही पड़ेगी। अच्छा ही है। साधु-संन्यासी किसमें कैसी शक्ति है, कौन कह सकता है ? तुम्हीं कहो !'

वह चुप रही। इनकार की बात उसके मुंह से भी नहीं निकली।

उसने गहरी सांस ली। शायद अकारण ही। शायद इनकार नहीं करते बना इसीलिए। शायद पहले दिन गुरुजी ने उसके अभिनय की निंदा की थी, इससे उसे

जो चोट पहुची थी यह शायद उसी की प्रतिक्रिया थी।

गुरुजी ने मौखिक रूप से निंदा की थी। मगर अखबार में उसकी प्रशंसा करत हुए लिखा था आश्चर्यजनक प्रतिभाशाली अभिनेत्री। पूरे नाटक की प्राणशक्ति की तरह खुद को सक्रिय रखा है, हर सहायक अभिनेता-अभिनेत्री के बीच और नाटक के हर घात-प्रतिघात में उसकी यह सक्रियता नजर आती है। बीच-बीच में कृत्रिमता दोष दृष्टि का भी भ्रम होता है, मगर वह दोष मूल नाटक का है। नाटककार ने नाटक करने के लिए कृत्रिम घटनाओं की सृष्टि की है, संवाद भी उसी नजरिये से रखे गये है। बस सारा ध्यान नाटक को चलाने पर केंद्रित रहा है। तालियां बटोरना रहा है। वही भूमिका जब जहां भी जमाने लगती है तभी अहसास होता है कि इतना करने की क्या जरूरत थी ? मगर आम जनता को नाटक देखने में काफी मजा आ रहा है। यह भी कम महत्व की बात नही है। इस देश की आम जनता की अपनी रुचि है। हम लोग विदेशी शिक्षा ग्रहण करने के फलस्वरूप अपनी रुचि खोकर विदेशी रुचि में परिमार्जित हो रहे हैं उन्हें अपने देश के केले के फूलों के व्यंजन में मजा नही आता। उस बदली हुई रुचि से केले के फूल का व्यंजन या पनीर का व्यंजन घटिया नहीं हो जाता। इस समालोचना पर भी विचार करना चाहिए।'

यह पढ़कर उसका मन बदल गया। भक्ति ? भक्ति क्या है ? लेकिन भक्ति जैसा ही कुछ महसूस हुआ। उसे लगा एक बार जाकर उन्हें देख आऊं। खुद जाकर आऊं। उस दिन सभी ने प्रणाम किया था, उसने नहीं किया था। उन्हें प्रणाम कर आऊं।

प्रणाम करते समये उसे जरा भी कुंठा नहीं हुई थी। रंचमात्र भी नहीं। वे सुदर थे, स्वास्थ्यवान थे, ज्ञानी थे, बातचीत में पारंगत थे—कुंठित होने की कोई बात ही नही थी। लेकिन जूठा—उनका चबाया हुआ पान प्रसाद रूप में अपने मुंह में वह ग्रहण नहीं कर पायी थी। उसका जी मिचलाने लगा था। उसके मुंह से निकल गया था—अरे सर्वनाश !

यह बात गुरुजी के भी कानों में गयी थी।

वे भी विचित्र व्यक्ति थे। उन्होंने तुरंत आशा से कहा था, 'सुनो ! इसने ठीक ही कहा है। बहुत ठीक कहा है। गुरु के जूठे प्रसाद और चरणधूलि में कोई खास बात नहीं होती। तुमने बिल्कुल ठीक कहा है।'

उसकी भक्ति बढ़ गयी। कुछ देर बाद एक और घटना से उसकी श्रद्धा और बढी। कहीं की एक रानी आयी थी। साथ में राजा भी थे। उन्होंने उनके चरणों मे एक बड़ी थाली रख दी, जिसमें फूल, फल, रेशमी जोड़ा धोती, फाउंटेन पेन, प्रसाधन सामग्री, रुपये का एक बंडल और भी ढेरों सामान थे।

गुरुजी ने अपने चरणों को समेटते हुए उन्हें लेने से इन्कार कर दिया।

वे दोनों हाथ जोड़कर घुटनों के बल बैठ गये। गुरु ने कहा, 'नहीं, इन्हें ले जाओ।'

वे लोग हिले तक नहीं। उसी तरह हाथ जोड़े बैठे रहे। गुरुजी ने बेहद शांत स्वर में मगर सख्ती से कहा, 'मैं तुम लोगों को जानता हूं। तुम लोगों के कोयले की खदान धंस जाने के कारण काफी लोग मर गये हैं। अपने रुपयों के बल पर तुमने मुकदमा जीत लिया है। अब मेरे पास अपने पापों से मुक्त होने के लिए आये हो। देखो, पाप से मुक्त करने की क्षमता मेरे पास नहीं है। ईश्वर से मेरा साक्षात् हुआ नहीं है। उनका पता भी मैं नहीं जानता। किस पाप की किस तरह शांति होती है मुझे नहीं मालूम। पाप होता भी है मैं नहीं जानता। मगर यह जो मैंने कहा, 'अगर यह सच है—तब भी मैं तुम लोगों को मुक्ति नहीं दूंगा। देना उचित नहीं है। यह सब यहां से हटाकर ले जाओ।'

उसी दिन उसने लौटते वक्त गुरुजी से हाथ जोड़कर कहा था, 'गुरुजी, मुझे दीक्षा दीजियेगा ?'

गुरुजी जोर से हंसकर बोले, 'दीक्षा ? दीक्षा लेकर क्या करोगी ? क्या होगा ?'

वह जवाब नहीं दे पायी थी। उत्तर सूझा नहीं था। खामोश रही थी। गुरुजी ने अचानक गंभीर होकर कहा, 'देखो, अमृत रखने के लिए स्वर्णपात्र की जरूरत होती है, मिट्टी का बर्तन नहीं चलता ?

उसे लगा किसी ने कोड़ा मार दिया हो। वह खामोश बैठी रही। सिर्फ अपनी गर्दन झुका ली थी।

गहरी सांस लेकर उसने गुरुजी का चरण स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाया। गुरुजी ने अपने पैर बढ़ा दिये।

सुचन्द्रा ने झुककर चरणों में सिर रखकर प्रणाम करना चाहा, पर ऐसा कर नहीं पायी। हाथ बढ़ाकर चरण छूकर उसे माथे से लगा लिया। ठाकुर ने पुकारा, 'आशा !'

'जी !'

गुरुजी ने कहा, 'ले।' यह कहकर मुंह से पान का जूठन निकालकर उसे दिया। आशा ने दायां हाथ बढ़ाकर बायें हाथ से अपनी दाहिनी कोहनी छूते हुए उसे ग्रहण करने के लिए तत्पर हुई। वह जैसे उस उच्छिष्ट को ग्रहण करके बेहद कृतार्थ हो गयी थी।

इसके बाद कई दिनों तक वह वहां नहीं गयी थी। जरूरत भी क्या थी ? उसका मन कुछ बदल गया था। उसने अपने को नाटक में भुला देना चाहा। भवेश के साथ बैठकर शराब पी। लेकिन गुरुजी को छोड़ने के बाद भी गुरुजी ने उसे नहीं छोड़ा। आशा ने एक दिन उससे कहा था, 'गुरुजी, तुम्हारे बारे में पूछ रहे

थे। पूछ रहे थे, वह कहा है ? मुझसे तो वह दीक्षा लना चाहती थी। उसका आन के लिए कहना।'

आश्चर्य—ठीक दूसरे दिन वह वहां चली गयी। अकेली ही एक टैक्सी से गयी थी और मुस्कराते हुए घुटने मोड़कर उनके सामने हाथ जोड़कर बोली थी, 'मैं आ गयी हू गुरुजी !' संयोग से गुरुजी उस वक्त अकेले ही थे।

'आयी हो ? अच्छा ! लेकिन—'

सुचन्द्रा ने मुसकराकर उनकी बातें खत्म होने से पहले ही कहा, 'लेकिन मुझ डर लग रहा था।'

'क्यों, तुम्हें दीक्षा नहीं दूंगा, इसलिए ?'

सुचन्द्रा सिर हिलाकर बोली थी, 'यह बात नहीं है। डर मुझे इस बात का था कि आखिर मै हूं मिट्टी का घड़ा, सोने के कलश के धक्के से कहीं टूट न जाऊं। लेकिन मेरे मन ने कहा, 'डर मत, जब सोने के कलश ने ही तुझे बुलाया है.. ।'

ठाकुर ने मधुर मुसकान से पूछा, 'किसने कहा कि मैंने बुलाया है ?'

'आशा ने।'

'लो, यह पान खा लो। यह जूठा नहीं है।'

उन्होंने अपने पन-डिब्बे से पान निकालकर दिया। मुंह से कूंचा हुआ पान निकालकर उसे एक तश्तरी में भक्तों के प्रसाद के लिए रख दिया। इसके बाद उन्होंने एक साथ दो बीड़ा पान अपने मुंह में जमा लिये।

इस बीच कुछ लोग आ गये थे। धीरे-धीरे दरबार लगने लगा। गुरुजी ने प्रवचन म कहा, 'देखो, चाहे तुम हीरे-जवाहरात या सोने-चांदी का दीया जलाओ, उसमें जलने वाली लौ तो एक ही है। लौ बुझेगी तो मिट्टी के दीपक से भी अंधेरा होगा और सोने के दीपक से भी। मगर एक बात है—प्रकाश-प्रकाश में फर्क होता है—मिट्टी का तेल महकता है, गैस निकलती है, घी के दीये की रोशनी उससे अलग होती है, मोमबत्ती की रोशनी उससे भी अलग।'

यह बात सोचने लायक थी।

क्या खूब बातें कही थीं और उनके कहने का तरीका भी प्रभावशाली था। उस बडी शांति मिली। उसकी इच्छा हुई कि उसी दिन वह अपना सिर गुरुजी के चरणों मे झुकाकर प्रणाम करे। लेकिन—

उसने जितनी बार उठना चाहा, गुरुजी ने उतनी बार कहा, 'जरा बैठो।'

आखिर में उन्होंने कमरे में बैठे दो अन्य लोगों से कहा, 'तुम लोग जरा बाहर जाओ।'

उनके बाहर जाने के बाद गुरुजी ने कहा, 'देखो, एक बात के लिए मैं तुम्हे सतर्क कर देना चाहता हूं। तुम शायद खुद भी नहीं जानती। तुम बेहद शृंगार करती

हो। इतना शृंगार करके यहां पर मत आना। ठीक है न ? यह तुम लोगों का थियेटर नहीं, आश्रम है।'

क्षण भर के लिए उसके दोनों कान शर्म से लाल हो गये। वह यहां शृंगार करके आयी है ? बेहद शृंगार करके ?

फिर भी उसने गुरुजी को त्यागा नहीं। त्याग ही नहीं पायी। गुरुजी ने भी उसे त्यागा नहीं। अपना मुंह नहीं फेरा।

उसने हाथ जोड़कर कहा था, 'आप मुझे मुक्ति दिलाएं।'

गुरुजी ने भी कहा था, 'तुम्हें मैं मुक्ति दिलाऊंगा।' लेकिन—। लेकिन वे ऐसा कर नहीं पाये। वह किसी तरह से भी उनका जुठारा हुआ पान मुंह मे नहीं रख पायी। वह किसी तरह से भी भिक्षुणी वैरागिनी नहीं बन सकी।

उसने कोशिश की थी। वह मिल की महीन सफेद साड़ी पहनने लगी थी। बिना तेल लगाये नहाने लगी थी। ऐसे में उसे और झिड़की सुननी पड़ी थी। गुरुजी ने कहा था, 'तुम कर क्या रही हो ? शिव की तपस्या भंग करने का इरादा है क्या? बस अपने मन को सादा बना लो। बाहरी शृंगार पर हम लोगों की नजर पड़ती है मगर भगवान् की नहीं।'

उस दिन गुरुजी ने कहा, 'तुम्हें बार-बार समझाकर भी समझा नहीं पाया। तुम पापिष्ठा हो।'

वे उस दिन बीमार थे। काफी बीमार। वह उनके सिरहाने बैठी थी।

काफी देर तक बेचेन रहने के बाद उनकी आंख लगी थी। नींद की दवा ली थी। वह बैठी थी। कमरे में उन दोनों के सिवा और कोई नहीं था। वह बैठी-बैठी गुरुजी को ही देख रही थी। एकटक देख रही थी। वे बेहद सुंदर थे। कठोर कठिन। सत्यवादी। लेकिन मन ही मन वह उन पर बेहद क्षुब्ध थी। उसका क्षोभ बढ़ता जा रहा था—वह बिल से किसी सांप की तरह बाहर निकलने के लिए तड़प रहा था।

अचानक—अचानक उसकी नजर करीब रखी तिपाई पर पड़ी जिस पर दाढी बनाने का सामान रखा था। गुरुजी के पास तीन उस्तरे थे। एक सेफ्टी रेजर। उनमे से दो देसी उस्तरे थे और एक विलायती।

अचानक क्या हुआ उसे पता नहीं। उस्तरे को उसने अचानक खोल लिया। न जाने कितनी देर तक वह उसे हाथों में लेकर खड़ी रही। उसे यह भी याद नहीं कि उसने कैसे गुरुजी के गले पर उस्तरे को रखकर एक झटके से उनका गला रेत दिया।

नहीं—उसे बिल्कुल याद नहीं।

हे ईश्वर, तुम्हें तो पता है, तुम्हीं कहो।

कहो, उसने यह काम क्यों और कैसे किया ? वह तो उनके पास मन की शांति के लिए गयी थी। उनके सामने आत्म-समर्पण करना ही तो चाहा था।

टन्न ! टन्न ! टन्न ! टन्न !

चार बज गये।

आखिरी घंटा। इसके बाद उसे कभी घंटे की आवाज नहीं सुनायी पड़ेगी। भारी मजबूत जूतों के शब्द करीब आने लगे थे-- ।

दरवाजा खुल रहा था। ताले में चाभी लगायी जा रही थी।

थकी और बेजान जैसी होकर उसने दीवार के सहारे बैठने की कोशिश की। जेल का दरवाजा खुल रहा था। लोहे का दरवाजा। दरवाजा खुल गया।

'सुचन्द्रादेवी ! आज तुम्हें--'

सुचन्द्रा विहंगिनी उठकर बैठ गयी। बेहद थकान थी, फिर भी उठ खड़ी हुई। उसे न कोई आक्षेप था न कोई उत्साह।--'चलो, मैं तैयार हूं।'

बगल के कमरे में बाथटब में पानी भरा जा रहा था।

'तुम नहा लो। इसके बाद-- ।'

उसने गहरी सांस ली। एक और गहरी सांस ! मन ही मन उसने खुद से पूछा, 'हे ईश्वर, तुम्हीं जवाब दो।'

जमादार ने कहा, 'बगल वाले कमरे में जाकर नहा लो।'

वह बोली, 'चलो।'

चिड़िया चहकने लगी थीं। उसने एक बार फिर कातर कंठ से पूछा, 'हे ईश्वर, तुम्हीं कहो। तुम्हीं कहो।' इस धरती पर उसके यह आखिरी शब्द थे। रूपवती विहंगिनी के।

एक प्रेम कहानी

प्रेम-फूलमनी का प्रेम। फूलमनी संथाल लड़की थी। मेहनत-मजदूरी करती थी। वह देखने में सुंदर थी। रंग काला था। जो लड़कियां थोड़ी लम्बी होती हैं उनकी चाल में एक छंद होता है। लम्बी संथाल लड़कियों का यह छंद परिश्रम करने के फलस्वरुप मनोहारी से और भी ज्यादा मनोहारी लगता था। फूलमनी लम्बी तो थी ही, उसकी देह का छंद भी बेहद मनोहरी था, मगर इसके अलावा उसमें ऐसा कुछ और भी था जिसके कारण मैं उसे सुंदर कह रहा हूं। यह सुंदरता उसकी दोनों आंखों में थी। उसकी आंखें बोलती हुई लगती थीं। उसका चेहरा उसके शरीर से भी ज्यादा आकर्षक था। इसके अलावा उसके बाल भी काफी लम्बे थे। हर सुबह अपने कंधे पर फावडा और सिर पर टोकरी रखकर वह अपनी सहेली का हाथ पकड़े हुए। इस गांव में घुसती थी। मेरे बगीचे के फाटक के सामने आकर फूल तोड़कर अपने जूड़े में लगाने के लिए रुक जाती थी। फाटक के दोनों तरफ बोगनवेलिया लगे हुए थे। एक में सफेद और दूसरे में गुलाबी फूल खिलते थे। इन्हीं फूलों के प्रति उसमें जबर्दस्त आकर्षण था।

मेरे गांव के मकान में एक बगीचा भी है, जिसकी लोग बड़ी तारीफ करते है। बगीचा आकर्षक ही था। मुझे खुद भी फूलों का शौक है मगर मुझसे भी ज्यादा शौक मेरे छोटे भाई को है। मैं कलकत्ता से पौधे ले जाता हूं। वहीं उन्हें लगाता और पानी देता है। इसके अलावा वह भी विभिन्न जगहों में पौधे लगाता था। पेड़ों में खूब खाद डालता जिसके कारण वे जंगली झाड़ की तरह बढ़ जाते थे। उनके नीचे घास उग आती थी। लोगों की निगाहों में वह जंगल जैसा लगता है, खासकर नगरों में रहने वाले को तो वह अच्छा ही नहीं लगता। मैं जब गांव जाता हूं, तब इन पेड़ों की छटाई करता हूं, निराई करता हूं, कुछ पौधे उखाड़ भी देता हूं, नीचे की घास वगैरह उखाड़कर साफ-सुथरा कर देता हूं। गांव में जाते ही मुझे इस काम के लिए मजदूरों की जरूरत पडती थी। खबर भिजवा देने पर मांझी-मांझिन आ जातीं, बगीचे में काम करती। मांझिनों को बालों में फूल लगाना अच्छा लगता है। वे यहां कम के लिए आए या न आएं उनके यहां आकर खड़े होते ही मैं पूछता, 'क्या चाहिए ?'

वे बांग्ला भाषा में ही कहतीं, बस उनके बोलने के लहजे में थोड़ा फर्क होता, वे कहती, 'फूल चाहिए।'

मैं पूछता, 'कौन-सा फूल ?'

'वह फूल।'

'ले ले।'

'छोटे बाबू डांटेंगे नहीं ?'

'नहीं, मैं कह दूंगा।'

वे खुश होकर फूल ले जाती थीं। गुलाब से बोगनवेलिया तक। छोटा भाई भुनभुनाता तो मैं कहता देख—'कमलकांत के दफ्तर' में लिखा है—गाय किसकी ? जो दूध दे उसकी। भले ही प्रसन्न ग्वालिन ने उसे खरीदा हो और रोज उसे पेट भरकर चारा खिलाती रही हो। इसी नजरीये से फूल उसका है जो उसे अपने जूड़े में लगाती हो, फूल का पौधा लगाने वाले का नहीं। मांझिन यह सुनकर हंसती। मतलब बात समझा देने पर वे जलतरंग की तरह खिलखिलाने लगती थीं। मगर यह सारी बातें सिर्फ फूलमनी से ही संबंधित नहीं है, लिहाजा इन्हें रहने ही दिया जाए।

उस दिन फूलमनी बोगानवेलिया के फूल तोड़कर जूड़े में लगाकर मेरे सामने आकर बोली, 'बाबू, इस बगीचे की सफ़ाई के लिए मजदूरों की जरूरत है ?'

मैं समझ गया उन्हें उस दिन काम नहीं मिला था।

मैंने पूछा, 'कितने लोग हो ?'

वह बोली, 'बस हम दो ही लोग हैं।' वह और उसकी साथिन। मैं उस लड़की की ओर मुग्धदृष्टि से देखते हुए बातें कर रहा था। मन ही मन उसके रूप की प्रशंसा कर रहा था। मैंने सोचा, उसकी तस्वीर खींच लूं। मैंने उसे पहले भी देखा था तब वह इतनी सुंदर नहीं लगती थी। वह यौवनवती हो गयी थी। कली-फूल बन चुकी थी।

उसने मुझसे फिर पूछा, 'कुछ कहते क्यों नहीं ? मुझे ऐसे क्या देखते हो हा—' उसकी गर्दन अपने आप टेढ़ी हो गयी।

मैंने कहा, 'तू तो बड़ी सुंदर है।'

दूसरी लड़की खिलखिलाकर हंसने लगी। वह नाराज होकर बोली, 'यह बात सभी को पता है। मगर तुम क्यों कह रहे हो ?'

'अरे वाह, सुंदर को सुंदर नहीं कहूंगा, उसे देखूंगा नहीं ?'

'नहीं, कुछ कहने या देखने की जरूरत नहीं है। बस यह बताओ मजदूरी कराने की जरूरत है या नहीं ?'

जरूरत है मगर तुझे तो मने पहले नहीं देखा ? तू यहीं की है

ठीक इसी समय मेरी पोती सुकू आ पहुंची। सुकू को सुकू कहने से अब वह नाराज हो जाती थी, उसे कहना पड़ता था श्रीमती शकुंतलादेवी। बल्कि मुखर्जी। वह कॉलेज में पढ़ती थी। वह कलकत्ते से मेरे साथ आयी थी। इसी गांव में उसके पिता रहते थे। अब वह कलकत्ता मे मेरे ही पास रहकर पढ़ रही थी। इस मामले में मेरा भी दुर्भाग्य था और उसका भी। मगर यह प्रसंग रहने दिया जाए। उसके पिता शांति शंकर की बात याद आते ही मेरी आंखों के सामने अंधेरा छाने लगता है।

कुछ क्षण के लिए पाठक मुझे वक्त दें। मैं जरा खुद को संभाल लूं।

शकुंतला बड़े उन्माद से नाना कहती हुई फाटक से घुसी। वह कोई उत्साहजनक खबर ला रही थी, मगर वह उन्हें देखकर चौंककर रुक गयी। उसके मुंह से निकल गया—वाह !

दोनों लड़कियां काम के इंतजार में जिस तरह मुंह किये खड़ी थीं ठीक उसके विपरीत ओर से शकुंतला उनके सामने आकर खड़ी हो गयी। फिर बोली, 'वाह !'

वे दोनों लड़कियां भी शकुंतला को देखकर उससे भी ज्यादा चकित हुई। वे भी उसे देखने लगीं।

मैं मामला समझ गया। मैंने पूछा, 'क्या बात है ?'

शकुंतला बोली, 'वाह यह तो बड़ी सुंदर है।'

'कौन ?'

'यही लड़की।'

इस बार। फूलमनी भी बोली, 'तू भी बहुत अच्छी है—खूब सुन्नर !' इस बार वे खिलखिलायीं नहीं। मैंने पूछा, 'ज्यादा सुंदर कौन है? मांझिन या बाबू की लड़की ?'

सुकू बोली, 'मांझिन !'

मांझिन सिर हिलाकर बोली, 'उहूं ! तू ! बाबुओं की बेटी।'

सुकू बोली, 'उहूं, तू !'

'उहूं तू !'

सुकू बोली, 'नाना आप ही फैसला कीजिए।'

'कह दूं ? मांझिन नाराज तो नहीं होगी ?'

'नहीं। सच कहना !'

'दोनों ही सुंदर हैं।'

इस बार वे दोनों ही हंसने लगी। इसके बाद मांझिन बोली, 'बाबू तुम बहुत अच्छे हो।'

दूसरी लड़की अभी तक चुप थी। बस सबके साथ हंस रही थी। बाकी समय अपनी साथिन के गले में बाहें डालकर उसके कंधे पर ठुड्डी रखकर मुस्करा रही थी। वह इस बार बोली, 'तुम बहुत चालाक हो बाबू !'

घंटे भर बाद मेरे कानों में गाने की आवाज आयी। रवीन्द्र संगीत। शकुंतला गा रही थी। वह गा रही थी, 'काली, वह चाहे जितनी भी काली हो, मैंने उसकी काली हिरनी जैसी आंखें देखी हैं।' गाने की आवाज बाहर से आ रही थी। अर्थात् बगीचे से। वह धूप में बैठकर गा रही थी—उसके इस अचानक कविता प्रेम से मैं थोड़ा खीझा भी। मैंने खिड़की से देखा—फाटक के इस तरफ अर्थात् भीतर बगीचे में बोगनवेलिया तथा रुक और पेड़ के मिलनस्थल के कारण जो छायादार कुंजवन तैयार हो गया था वहीं पर सुकू और मेरी भतीजी कुमू, जो सुकू की हमउम्र थी, उन दोनों संथाल लड़कियों के साथ बैठी थीं। बड़ा अंतरंग वातावरण था। सुकू गाना गा रही थी।

मुझे यह देखकर बहुत अच्छा लगा। मैं खिड़की से हट गया। सुकू का गाना खत्म हुआ। इसके बाद ही संथाली स्वर कानों में आया। मैंने देखा, हां, वहीं मांझिन गा रही थी। मैं ध्यान लगाकर उसके गीत के बोल सुनने लगा—

> ओ कुली ऊपर से उतर कर चले आओ,
> वहीं जहां पर कदंब के दो पेड़ खड़े हैं।
> कदंब तले तुम मत जाना—
> फिर शादी नहीं हो पायेगी।
> तुम्हारे ब्याह में चूड़ा नहीं हो पायेगा
> कदंब में फूल खिल गये हैं।
> कदंब फूल का पीला रंग लग जायेगा तो
> फिर शादी नहीं हो पायेगी।

अचानक किसी ने जोर से कहा, 'वंडरफुल ! सिम्पली वंडरफुल ! अरे वाह, दोपहर में बड़ी मौज-मस्ती हो रही है।'

यह आवाज किसकी थी मैं जान गया। गले के स्वर से ही मैं पहचान गया। शकुंतला का बड़ा भाई था। मेडिकल कॉलेज में पढ़ रहा था। मेरा ही नाती प्रशांतशंकर था। लेकिन हम लोग उसे ए. एस. यानी अशांत शंकर कहते थे। शकुंतला कहती, नहीं दादाजी—ए. एस. एस.।

पी. एस. बगीचे के उस तरफ की चारदीवारी से किसी डाकू की तरह भीतर

कूद गया। सभी लड़कियां चौंक गयीं। दोनों ही संथाल लड़कियां चौककर कुछ हाथ पीछे हट गयीं।

शकुंतला बोली, 'भैया, तुम तो बड़े अभद्र हो।'

पी. एस. ने कहा, 'ठीक है, तेरी बात मान लेता हूं—

'तुम शकुंतला नहीं हो, तुम मंथरा हो।
मैं उस कलहपरायणा मंथरा की चोटी पकड़कर
सारी बातें लेता हूं। लेकिन इस दोपहर को
छायादार कुंजवन में—इतना सुंदर गीत सुनकर
तेरा भाई तो दीवाना हो गया।'

'तभी हनुमान की तरह ऊपर से झप्प से कूद पड़े ?'

'बिल्कुल ! हनुमान ही सही, मगर गाना क्यों बंद हो गया ? कौन गा रही थी ?' इस बार वह उन दोनों संथाल लड़कियों की ओर मुग्ध दृष्टि से देखने लगा। इसके बाद उसने कहा, 'शी इज वेरी ब्यूटीफुल मंथरा !'

'वह मेरी सहेली है।'

'तेरी सहेली ? वंडरफुल ! तब तो मैं तेरा भैया उसका मीत बन सकता हूं। क्यों मांझिन क्या यह तेरी मितवा है ?'

'हां, हम दोनों की मिताई हो गयी है।'

'तब मैं भी तेरा मितवा हो गया, मैं इसका बड़ा भाई हूं। ठीक है ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

इस बार वह दूसरी लड़की बोली, 'ऐसे में तो बाबू इसकी शादी नहीं हो पायेगी।' वह हंसने लगी।

'ऐसा क्यों ?'

'मांझी लड़के नाराज हो जायेंगे।'

इस बार शकुंतला ने मजाक किया, 'तब तो इसी के साथ तेरी शादी कर दूंगी।' यह सुनकर दूसरी लड़की खिलखिलाकर हंस पड़ी। वह लड़की बोली, 'बेकार का मजाक मत कर मितवा !'

शकुंतला बोली, 'कोई बात नहीं, मितवा न सही हमारे घर की बहू बन जायेगी।'

'क्यों, ऐसा क्यों होने जाऊंगी ?'

'मगर क्यों नहीं बनेगी, यह तो बता ?'

मेरा नाती ए. एस. या ए. एस. एस. वहां खड़ा होकर बेहये की तरह हंसे जा रहा था।

वह लड़की बोली, 'तुम लोगों की घर की बहू बनने पर मुझे 'सान' (घूंघट) में रहना पड़ेगा। मैं चिड़िया और खरगोश नहीं खा पाऊंगी।

मेरे नाती ने कहा, 'यह भी कह, पीने के लिए 'हंड़िया' नहीं मिलेगी।

'हां, यह बात भी है।'

शकुंतला बोली, 'सब कुछ मिलेगा। मेरा भाई भी बंदूक से चिड़िया मारता है। चिडिया, खरगोश सब मारकर ले आयेगा।

उस मांझिन की सहेली का हंसते-हंसते बुरा हाल हो गया। वह बोली, 'तेरा भाई बाघ मार सकता है ? जंगली सुअर मार सकता है ? यह जिससे प्रेम करती है, वह बाघ मार चुका है।'

नाती ने कहा, 'कोई बात नहीं, मैं भी बाघ मारूंगा।'

'वाकई मार सकते हो ?'

नाती बोला, 'इस बात के गवाह रहें चंद्र-सूर्य, गवाह रहें देवता—मेरा नाती मेडिकल कॉलेज में पढ़ने के बावजूद नाटक प्रेमी था। वह देखने में सुंदर और लम्बा-चौडा था। अपने कॉलेज के रंगमंच में वह आधे हीरो से तीन चौथाई हीरो तक पहुंच चुका था।

शकुंतला ने अपने भाई से कहा, 'अब ठीक हुआ न ?'

'क्या हुआ ?'

'चश्मे के अंदर से अपनी बड़ी-बड़ी आंखें फाड़कर मेंढक की तरह टर्राते हुए भाषण झाड़कर अपने को बहादुर समझने लगे थे। अब क्या हुआ ? फूलमनी के सामने हार गये। धत्त तेरे की।'

यह बात कितनी बढ़ती, पता नहीं, लेकिन मुझे लगा कि अब ये दोनों बेवकूफ आधुनिक और आधुनिका मजाक ही मजाक में कुछ गोलमाल कर बैठेंगे, वह जो इस सरल सहज अर्धवन्य आदिम नारी के लिए असहनीय, अपमानजनक हो सकता है। इसलिए इस वक्त पितामह का आविर्भाव न होने से नाटक वियोगांत हो जायेगा। मै खांसकर अपने आने की सूचना देते हुए उनके बीच जाकर खड़ा हो गया। मैंने कहा, 'अरे तुम सब क्या बातें कर रहे हो, जरा सुनूं !'

'क्यों नाना ?'

'क्यों ? मैंने इन दोनों को काम पर लगाया है और तुम भाई बहन उन्हें काम करने नहीं दे रहे हो, बस मजाक किये जा रहे हो और मांझिन तुम दोनों भी काम करने के बजाय इनके साथ गप्पें लड़ाने लगीं।'

'उसकी सहेली बोली 'क्या करती बाबू ? ये लोग काम करने ही नहीं दे रहे है '

वह मांझिन बोली 'जरा देखो यह बाबू मेरे साथ मजाक करने लगा फिर

वह अपनी साथी से बोली, देला ! अर्थात् चलो।

वे दोनों काम में लग गयीं। मैंने अपने नाती-नातिन से कहा, 'इनके साथ मजाक नहीं करना चाहिए। यह सब मत करो। पता नहीं, किस बात का बतंगड़ हो जाए, उन्हें बुरा लग जाए।'

'लगता है आपने सब कुछ सुन लिया है।'

'हां, बूढ़ा हो गया हूं फिर भी इन्सान तो हूं। बुढ़ापे में हाथ में माला लेकर सेज सजाना निषिद्ध है, लेकिन तुम्हारे वासर में ताक-झांक करने का अधिकार तो है। श्रीमती शकुंतले जब 'काली हिरण जैसी आंख' गा रही थी तभी से बड़े कौतूहल से मैं सब सुन रहा था।'

'नाना, यह वंडरफुल लड़की है।'

'कैसे जाना ?'

'उसकी बातों से लगा। वंडरफुल !'

'यही तो मैं पूछ रहा हूं।'

उस लड़की से दोस्ती करने की शकुंतला को इच्छा हुई थी। ऐसा उसकी खूबसूरती के कारण ही था। वह जाने कब, जहां वे दोनों काम कर रही थीं, उनके पास जाकर खड़ी हो गयी, उसका उसे ध्यान नहीं रहा। वह वहां खड़ी होकर अपने आप ही गाना गाने लगी।

उस लड़की ने अचानक पूछा, 'यह क्या कह रही हो ठाकरून !'

'यह गाना है।'

'तो गाने में क्या कह रही हो—मैं काली हूं, तू सुन्नर है ?'

'नहीं, मैं गा रही हूं कि तू काली है तो क्या, तेरी आंखें बड़ी सुंदर है। तू बड़ी खूबसूरत है।'

'गाना बढ़िया है। एकबार फिर सुनाओ।'

'तब तुझे भी एक गाना सुनाना पड़ेगा। तभी मैं गाऊंगी।'

'ठीक है।'

'तब चल उस छांह में चलकर बैठें।'

'काम नहीं करने पर बाबू डांटेंगे।'

'नहीं, नहीं, नाना डांटेंगे नहीं। मेरे होने पर वे कुछ नहीं कहेंगे।'

'तू बूढ़े बाबू की नातिन है ? तुझे खूब प्यार करते हैं ?'

'बहुत !'

'तब ठीक है चलो। हां ठाकरून वे तुम्हें क्या कहकर बुला रहे थे ? तुम्हारा नाम बड़ा प्यारा है

'शकुंतला !'

यह इस नाम का सही उच्चारण नहीं कर पायी। इस बात पर वे दोनों आपस में ही हंसने लगीं।—अरे ठाकरून, यह नाम हमारी जवान से नहीं निकलेगा।'

'तब मुझे सुकू कहना।'

'सुक्कू ! धत्त यह तो छोटी बच्ची को कहते हैं। इतनी छोटी बच्ची को।'

'तब मुझे मीता कहना। मैंने तेरे साथ मिताई कर ली है।'

'यह बढ़िया बात है।'

'अब अपना नाम बता।'

'मेरा नाम फूलमनी है।'

'बड़ा अच्छा नाम है।'

'तूने अपना जो नाम बताया—वह ज्यादा अच्छा है।'

'उसका नाम क्या है ?'

'उसका नाम झुमरी मांझिन है। ठाकरुन तेरी शादी नहीं हुई ?'

'ठाकुरुन क्यों कहती हैं ? मीता कह।'

'मुझे शर्म आ रही है। तू बाबुओं की लड़की है।'

'उससे क्या हुआ ?'

'मीता कहूंगी। तुम्हारी शादी में आकर मीता कहूंगी। तुम्हारे दूल्हे को मितवा।'

'धत्त ! इतनी जल्दी मेरी शादी नहीं होगी। मैं अभी शादी नहीं करूंगी। अभी पढ़ाई करनी है। इसके बाद।'

'बाप रे ! कितना पढ़ोगी ?'

'बहुत ! और भी पांच-छह साल तक। फिर नौकरी—'

'नौकरी करोगी ? बाप रे !'

'क्यों, तूने देखा नहीं, यहां स्कूल में लड़कियों को नौकरी करते हुए ?'

'हां देखा तो है। उन लोगों ने शादी नहीं की है ?'

'उनकी मांग में सिंदूर देखा है ?'

'हां, देखा है। सिंदूर नहीं था। सोचा था क्रिस्तान होगी, सिंदूर नहीं लगातीं।'

'तेरी शादी हो गयी ?'

'नहीं।'

'तू कब शादी करेगी ?'

'शादी ? हो जायेगी। किसी को पकड़ना पड़ेगा। एक को मैंने पकड़ा भी था, मगर वह अच्छा नहीं लगता। आपस में नहीं पटी।'

ऐसा क्या ?

'वह इस तरह कि मैं सुंदर हूं, इसलिए सारे लड़के मेरे पीछे लगे रहते हैं, मुझसे प्यार करना चाहते हैं। उनमें से कोई ताड़ की तरह लम्बा है तो कोई नाटा, कोई बदसूरत है तो कोई सुंदर। मैं एक सुंदर लड़के से प्रेम करने लगी। फिर पाया कि उसके चालचलन ठीक नहीं है, साथ ही वह बेहद आलसी भी था। चोरी-चकारी भी करता था। शराब पीता था। उसमें अच्छाई भी रही होगी, मगर वह मुझे अच्छा नही लगा। तब मैंने उसे छोड़ दिया। मैंने भगा दिया—जा भाग ! अब फिर मैं कोई लडका तलाश रही हूं। मनलायक लड़का।'

'तेरे माता-पिता लड़का नहीं ढूंढेंगे ?'

'उन्होंने एक लड़के से शादी करायी थी। मगर बाद में तलाक हो गया।' फूलमनी की साथिन ने कहा, 'ठाकरून इसका बाप मर गया है।'

फूलमनी रुआंसा होकर बोली, 'तेरी तरह ही मितनी। तुम्हारे पिता भी नहीं है, मुझे मालूम है।'

इसके बाद कुछ क्षणों तक एक उदासी भरी दुर्लभ चुप्पी छायी रही।

अचानक फूलमनी बोली, 'अब चलूं। आ मितिन अपना काम करें।'

'नहीं बैठ ! तू तो बहुत अच्छी है रे !'

'तुम भी मितिन बहुत अच्छी हो।'

'तुम मुझे बहुत अच्छी लगी हो। मुझे यही सोचकर बड़ा अच्छा लग रहा है।'

फूलमनी की सहेली हंसते हुए बोली, 'लड़के कहते हैं कि फूलमनी बड़ी पाजी है।'

'क्यों, ऐसा क्यों कहते हैं ?'

'यह बड़ी घमंडिन है। किसी भी लड़के को पास फटकने नहीं देती।'

'यह क्यों देगी ? कितनी सुंदर है यह !'

'हां, तुम्हीं कहो ठाकरून, मैं हर ऐरे-गैरे को कैसे पसंद कर सकती हूं !'

उदासी का वातावरण आपसी हंसी-मजाक में जाने कब छंट गया। इस बीच कुमू आ गयी। वह सुकू की हमउम्र उसकी मौसी थी। वह आयी तो महफिल और गुलजार हो गयी। वह वहीं की रहने वाली थी। इसलिए फूलमनी को पहचानती थी। उसने कहा, 'क्यों वह क्या बुरा है जिसने एक चीते को दुम से पकड़कर घुमा दिया था। उससे तो तेरा चक्कर चल ही रहा है। क्या मुझे नहीं पता ?

झुमरी हंसने लगी।

फूलमनी बोली, 'मितनी तुम गाना सुनाओ। इन सब बातों पर कान मत दो।'

शकुंतला ने गाना गाया। उसकी जिद पर उसकी मितिन ने भी गाना सुनाया इसके बाद का किस्सा तो पता ही है तारस्वर में चीखते हुए ए एस एस ने

वाहवाही दी, हनुमान की तरह छलांग लगाकर वहां कूद पड़ा।

वहां की संथाल बस्ती बहुत बड़ी थी। सौ-सवा सौ घर तो होंगे ही। वे वहां पर करीब साठ सालों से रह रहे थे। पहले एक सरदार के अधीन वे लोग रहते थे। बूढ़ा मेघनाथ सरदार लगभग साढ़े छह फुट लम्बा, लेकिन दुबला-पतला मगर था, बड़ा साहसी। अब सौ-सवा सौ घर थे और तीन-चार टोलों के तीन-चार सरदार भी थे। यहां पर अब चार राइस मिलें खुल गयी थीं। देश की आजादी के बाद काफी विकास भी हुआ था। सड़कें, नये मकान, नहर—इन सबके कारण संथाल बस्ती का भी विकास हुआ। इसके अलावा आधे मील दूर पर भी उनकी एक छोटी बस्ती बस गयी थी—मील भर दूर दक्षिण-पश्चिम दिशा में एक और पुरानी बस्ती थी। इसके अलावा तीन-चार मील के अंदर और भी आठ-दस बस्तियां थीं।

इस बड़ी संथाल बस्ती के पश्चिमी टोले में फूलमनी रहती थी। उसका बाप खेती करता था। घर में दो बैल थे। वह खेत बटाई पर काम करता था। फूलमनी की मां भी खेती में अपने पति की मदद करती थी। उनके दो लड़के और एक लड़की थी। एक वक्त था फूलमनी के बाप ने खेती से काफी कुछ जमा कर लिया था। उसके दोनों लड़के बड़े थे। वे दोनों भी खेती में काम करते थे। बाकी समय मजदूरी करते। मिट्टी खोदने का काम करते थे। मां-बाप और दोनों लड़के काम करने घर से निकलते थे। उनके साथ दस-ग्यारह साल की फूलमनी भी होती। वह एक ऊंची धोती पहनती थी, बीच-बीच में वह भी मिट्टी भरी टोकरी सिर पर लादकर मजदूरी करती थी।

दोनों बड़े भाई शादी के बाद सिर्फ अलग ही नहीं हुए, वे वहां से दूसरी जगह चले भी गये। एक तो वह टोला छोड़कर दक्खिन टोले की तरफ चला गया। उस टोले के सरदार से इस टोले के सरदार की लड़ाई थी। फूलमनी का बाप इस मुहल्ले का सरदार था। उसके लड़के ने उस टोले के सरदार की पोती से शादी कर ली। मा-बाप के साथ उसकी लगभग मुंहदेखी ही बंद हो चुकी थी। छोटा बेटा शादी करके आमोदपुर में बस गया था। वह एक कारखाने में काम करने वाली मांझी की लड़की से, जो खुद भी कारखाने में काम करती थी, शादी करके वहीं काम पर लग गया।

फूलमनी अपने मां-बाप के साथ सुख से ही थी। अचानक उसके बाप की मौत हो गयी। फूलमनी उस वक्त चौदह-पन्द्रह साल की थी। वह उस वक्त पूरी तरह से बोझिया मजदूर बन गयी थी और वह फावड़ा चलाना भी सीख गयी थी। वह अपनी हमउम्र झुमरी के साथ मेहनत मजदूरी करती थी। एक जन मिट्टी खोदती दूसरी टोकरी में उठाकर गिरा आती थी

कभी-कभी वह मा के साथ भी काम करती जब तक उसकी शादी नही हो जाती, तब तक किसी मर्द के साथ वह काम करना नहीं चाहती थी। शादी हो जाने के बाद वह अपने पति की बोझिया बनकर काम करेगी। फूलमनी की मा के पास थोड़ा बहुत पैसा था, यह सभी की धारणा थी। बाप की मौत के बाद वह दोनों भाई आकर बैलों की जोड़ी के एक-एक बैल लेकर चले गये थे। धन के तीन हिस्से करके दोनों भाई अपना-अपना हिस्सा ले गये। मां और फूलमनी के हिस्से मे एक हिस्सा आया। अब मजदूरी करके उनकी जीविका चल रही थी। वह कुछ दिन कारखाने में काम करने गयी थी—लेकिन वहां से भाग आयी। वहां के सारे लोग मिस्त्री, फिटर से लेकर खजांची तक सभी उसे परेशान करते थे। सबसे ज्यादा परेशान तो उन बैलगाड़ियों के गाड़ीवान करते थे जो धान-चावल लादकर ले आते थे और यहां से स्टेशन पहुंचाते थे। उसने अपनी मां से कहा था—तू कारखाने में काम कर। मैं इधर-उधर मजदूरी कर लूंगी। झूमरी के साथ मजदूरी करूंगी।'

फूलमनी मिट्टी खोदती थी, सिर पर लादकर ले जाती थी—धान के समय धान की रोपनी करती थी, पौष महीने में धान काटती थी। देखते-देखते वह कब जवान ओर खूबसूरत हो गयी इसे वह खुद भी नहीं समझ पायी। यह बात अपने टोले के संथाल युवकों की नजरें देखकर और किसी ने किसी बहाने अपने घर में उनका आना-जाना देखकर उसके ध्यान में आयी थी। इसके बाद आईने में उसने खुद को देखकर अपनी खूबसूरती को पहचाना। संथाल युवकों की भीड़ देखकर उसे बड़ा मजा आता था। अपनी खूबसूरती पर उसे घमंड भी हुआ। वह खूबसूरत थी—गर्व होना स्वाभाविक ही था।

अपनी मां से पैसे लेकर उसने दुकान से अपने लिए एक साड़ी भी खरीदी।

दुकानदार से बोली, 'मुझे एक बढ़िया साड़ी देना।'

'बढ़िया साड़ी ? किस तरह की बढ़िया साड़ी ?'

'वेसी, जैसी बाबुओं की लड़कियां पहनती हैं। लाल पाड़ वाली।'

'दो भाई, मांझिन को एक बढ़िया साड़ी दो।'

दुकानदार ने भी अपने को गंभीर बनाते हुए जितनी रसिकता वह कर सकता था, उतनी रसिकता करने की कोशिश की। इसका कर्मचारी भी उसके सामने साड़ी फेंककर मजा लेते हुए बोला, 'जरा देख यह तुझ पर खूब फबेगी। बहुत सुंदर लगेगी। संथाल छोकरे तुझे देखकर पगला जायेंगे।'

फूलमनी घमंड और कौतुकवश मुखरा हो गयी थी। वह बोली, 'तू नही पगलायेगा ?'

वहां जितने लोग मौजूद थे, सभी हसने लगे। फूलमनी बोली, 'तू अपनी बात कह।'

'अरे उसकी बात छोड़। पागल तो मांझी होंगे।'

'वे बौरायेंगे तो तुझे क्या ?'

गहरे नीले रंग पर जर्दा चेक वाली एक साड़ी खरीदकर वह ले आयी। उसने कुछ दिन पहले स्कूल की एक अध्यापिका गौरी को उसी तरह की सिल्क की साड़ी पहने देखा था। उसे इस बात का ख्याल नहीं था कि उसके काले रंग पर वैसी नीले रंग की साड़ी अच्छी नहीं लगेगी। न यह बात उसकी समझ में पहले आयी थी और न साड़ी पहनने के बाद भी उसे इस बात का ख्याल हुआ कि वह साड़ी उस पर फब नहीं रही थी। वह उसे पहनकर बड़ी खुश थी।

उस साड़ी को पहनकर वह झरने से पानी लाने जा रही थी—अकेले ही जा रही थी। जानबूझकर ही अकेले जा रही थी। उसके पीछे पूरब टोले के सरदार का लड़का आ रहा था। वह खूब सजा-संवरा था। बीच-बीच में वह बांसुरी भी बजाने लगता था। फूलमनी को यह बात समझने में दिक्कत नहीं हुई कि वह बांसुरी के इशारे से उसे रुकने के लिए कह रहा था, उसे ही बुला रहा था।

वह रुक गयी। फिर पीछे मुड़कर बोली, 'क्या बात है ? मेरे पीछे-पीछे क्या आ रहा है ? लम्बा कूबड़ वाला गिरगिट !'

उस युवक ने ऐसी आशा नहीं की थी। उसके पिता संपन्न किसान थे। उसके पास चार बैल थे। खुद के पांच बीघे खेत थे। उससे शादी करने के लिए जाने कितनी लड़कियां लालायित थीं। बाजार से चीजें खरीदने के लिए उसके पास पैसे भी थे। उसे इस तरह फूलमनी लम्बा गिरगिट कुबड़ा कहेगी, यह बात उसने सोची नहीं थी।

वह कुछ घबराकर बोला, 'मैं झरने तक जा रहा हूं। तेरे पीछे क्यों आऊंगा ?'

'ठीक है तू झरने तक जा। मैं यहीं बैठती हूं।'

वह बैठ गयी। इसके बाद अचानक थूकते हुए बोली, आख थू !' उस छोकरे कन्हाई का मुंह उतर गया। वह बोला, 'तूने मुझे देखकर थूका है ?'

'तुझे देखकर क्यों थूकूंगी ? थूक आया तो क्या करती !'

उसने बात इस तरह कही कि कन्हाई उससे झगड़ा नहीं कर पाया। वह बायीं ओर से निकलकर थोड़ी दूर के एक झरने की ओर चला गया।

फूलमनी खिलखिलाकर हंस पड़ी। इसके बाद मुंह फेरकर जोर से बुलाने लगी, 'आह-आह, तू-तू, मूंरा-मूंरा ! आह ले-ले इह ! मूंरा उसके पालतू कुत्ते का नाम था।

दूसरे दिन मजूरी से लौटने के बाद उसकी मां बोली, 'कन्हाई का बाप आया

था रुपया देने की बात कह रहा था दस रुपये वाली दो साड़िया देगा और भी बहुत कुछ

मजूरी से लौटकर थकान के मारे दिमाग सही नहीं रहता। उसने पूछा, 'तूने क्या कहा ?'

'क्या कहा ? कहा यह तो खुशखबरी है—'

'खुशखबरी ?' उसकी मां अवाक् रह गयी। बोली, 'उनके पास जमीन-जायदाद है। दो हल है। कितना धान—'

'तू चाहे तो जा ! मैं वहां शादी नहीं करूंगी।'

'नहीं करेगी ?'

'नहीं, उस लम्बे कूबड़ वाले गिरगिट से ? तू जबर्दस्ती करेगी तो यहां से चली जाऊंगी।'

'तू मरेगी !'

'जबर्दस्ती करेगी तो थाने में चली जाऊंगी। हां !'

कुछ दिन पहले बाबुओं में से किसी लड़की के पिता ने उसकी शादी एक खराब लड़के से तय कर दी थी। अपनी बेटी की बात उसने नहीं सुनी। वह लडकी थाने में चली गयी थी। इसे लेकर पूरे गांव में हड़कंप मच गया। वह शादी रद्द हो गयी। यह मन आजकल की फूलमनी वगैरह सीख गयी है। फूलमनी कम साहसी नही थी। उसकी मां यह बात जानती थी। वह खामोश हो गयी।

इसके बाद फूलमनी ने इस तरह की बातें कइयों से कही थीं। मगर अचानक सब उलट गया।

कुछ महीने पहले वहां पर एक संथाल युवक आया था। उसका नाम था बुधन मुर्मु। वह खुद को बुधन मांझी न कहकर बुधन मुर्मु कहता था। वह मामूद बाजार के पास से आया था। वहां के सरदार के साथ उसका झगड़ा हो गया था। इसीलिए वह यहां भाग आया था। वह यहां के पुराने सरदार मेघलाल मांझी की बेटी के बेटा का बेटा था। उसी रिश्ते के सहारे उसने मेघलाल के बेटे के बेटे के पास आकर कहा, 'अब मैं यहीं रहूंगा।'

मेघलाल के बेटे का बेटा न अब सरदार था न उसकी आर्थिक हालत पहले जैसी थी। फिर भी उसने कहा, 'यहां आ ही गया है तो रह। मगर एक बार सरदार से मिल ले। उसकी जानकारी में रहेगा।'

सरदार डगरू मांझी काफी पैसे वाला था। वह दो हलों की खेती करता था। धान का भंडार भी रखता था। उसे ऊंचे दाम पर बेचता। पावों में टायर के सैंडल पहनकर गांव में घूमता। बाजार में उसकी बड़ी खातिर होती। उसके चार लड़के और

एक लड़की थी। सब अलग-अलग रहते थे। बेटी की शादी हो गयी थी। दामाद उसी के साथ रहता था। ससुर के यहां काम करता। पांच साल इसी तरह खटने के बाद उसे एक जोड़ी बैल, बर्तन और धान देने का वादा ससुर ने किया था। उसके बाद वह अलग घर लेकर रहेगा।

बुधन को देखकर डगरू खड़ा हुआ। उसकी कद-काठी अच्छी थी। जबर्दस्त मांझी बनेगा। अभी तो वह उन्नीस-बीस साल का ही था, मगर उसकी छाती कितनी चौड़ी थी। लम्बा भी कम नहीं था।

बुधन को पहली बार देखकर फूलमनी के मुंह से निकला, 'अरे बाप रे, यह कहां से आ गया ?'

बुधन ने फूलमनी से कहा था, 'काफी दूर से आया हूं। मामूद बाजार से। मोरक्खी (मयूराक्षी) को जहां बांधा गया है, वहीं से। मगर तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ?'

'मेरे नाम से तुम्हें क्या काम है ? तुम न जाने कौन हो, तुम्हें मैं क्यों बताने जाऊं ?'

'मैं अब यहीं का हो गया। अब से यहीं रहूंगा। मैं मेघू सरदार की बेटी के बेटे का बेटा हूं। मेरा नाम बुधन मुर्मु है।'

'ठीक है। रहो। मेरा नाम फूलमनी है।'

'तुम्हारा नाम अच्छा है।'

'वाकई ?'

'हां, तुम फूल की माफिक हो भी।'

'अच्छा ! तो क्या मुझे अपने बालों में लगायेगा ?'

'मन तो ऐसा ही करता है।'

'हूं, तू तो बड़ा रसिक है। बालों में फूल लगायेगा। जा भाग।

फूल लगाना इतना असान नहीं है। जा, जा ! नहीं तो मैं लोगों को बुलाऊंगी। भाग !'

मगर इस बार फूलमनी से थूकते नहीं बना। सिर्फ उसने उसे भगा दिया।

शाम हो गयी थी। फूलमनी गांव के किनारे एक दुकान में मिट्टी का तेल और सरसों का तेल खरीदने गयी थी। लौटते समय उसकी भेंट बुधन से हुई। वह एक टीले पर बैठा था। सामने खुला मैदान था। वहां से पश्चिम की ओर गांव के बड़े बाबुओं का बाग और उसके बीच में बना सफेद मकान का उपरी हिस्सा नजर आता था। उसके बाद थोड़े से खुले हिस्से से दूर तक का दृश्य दिखायी पड़ता

था सूर्य अस्त हो गया था उस तरफ आसमान में लालिमा छायी हुई थी वह उसी को देख रहा था

बुधन वहां के लिए नया था। वहां के सभी मांझी शराब पीने चले गये थे। अकेला वही नहीं गया था। वह पराये घर में रह रहा था। वे ही उसे खिला भी रहे थे। हंड़िया का पैसा उसे कौन देता ?

फूलमनी उधर से जाते हुए रुक गयी। मुड़कर उसने पूछा, 'यहां बैठे-बैठे क्या देख रहे हो ?'

'आसमान का लाल रंग देख रहा हूं।'

फूलमनी हंसने लगी। 'आसमान में तारे ढूंढ़ो। लाल रंग गीदड़ देखते हैं।'

दूसरे दिन गांव में उसे एक जगह मजूरी का काम मिल गया। बाबुओं के पोखर का कीचड़ उलीचा गया था। अब किनारे मिट्टी काटकर समतल कराये जा रहे थे। बगीचा बनना था। वहां पर बीच-बीच में ताड़ के कटे हुए पेड़ की खूंटियां निकली हुई थीं। उन्हें निकालना था। लगभग तीस संथाल मर्द-औरतें वहां काम कर रही थी।

झूमरी और फूलमती में से एक मिट्टी काट रही थी, दूसरी टोकरी में उठाकर गिरा आ रही थी। कई मांझी कुल्हाड़ी और गैंती लेकर उन खूंटियों को उखाड़ रहे थे। उन्हीं में बुधन भी था। थोड़ी ही देर में सभी की नजर बुधन पर पड़ी। वह टांगी चला रहा था और ऐसा करते वक्त उसके गले से हूं-हूं की आवाज भी निकल रही थी। वह बिल्कुल दैत्य लग रहा था। वह खूंटियों को उखाड़कर गैंती के जोर से अपनी पूरी ताकत लगाकर उन्हें पोखर में गिरा रहा था।

झूमरी बोली, 'जरा देख, कितना ताकतवर है।'

फूलमनी बोली, 'तू ही देख।'

'छाती फूलकर कितनी चौड़ी हो गयी है। बाप रे !'

'तू ही जाकर उस छाती पर सिर पटककर मर। बड़ा आया....'

वह अपने काम में लग गयी।

अचानक बुधन मारे डर और घबराहट के चीखता हुआ वहां उछलने लगा—अरे, अरे, अरे !'

वह दृश्य बड़ा मजेदार था। एक इतना बड़ा मर्द जो दैत्य की तरह अभी तक मिट्टी खोद रहा था अचानक इस तरह कूद और चिल्ला रहा था।'

लड़कियां हंसी के मारे लोटपोट हो गयीं। मर्द पूछने लगे, क्या हुआ ? एक-दो उधर दौड़े भी।

बुधन घबराया हुआ खड़ा था। उसने सिहरते हुए कहा, 'अरे बाप रे, बिच्छू।'

वहां एक नहीं, दस-बारह बिच्छू थे। एक ताड़ के पेड़ की जड़ जोर लगाकर

उखाड़ने के बाद उसके नीचे बिल से वे सब निकल आये थे। सूरज की धूप लगते ही वे सब बाहर आकर इधर-उधर भागने लगे।

अब सारी लड़कियां भागीं। वे सब घबरायी हुई। दौड़ रही थीं। एक लडकी दूसरी से टकराकर गिर पड़ी। तब तक मांझियों ने बिच्छुओं को गैंती से मारना शुरू किया। बुधन ने सबसे ज्यादा मारा।

एक बिच्छू को फूलमनी ने भी मारा। वह घबराकर वहां से भागी नहीं थी। वह सतर्क होकर खड़ी थी। एक बिच्छू उसी की ओर भागा था। उसने उसे बड़े धैर्य से गैंती से पीटकर मार डाला।

मांझियों ने बुधन की मर्दानगी की सराहना की। वाकई वह ताकतवर था। वह एक तगड़ा कामगार बनेगा। लेकिन उसी दिन शाम को उसकी बदनामी भी होने लगी—लौंड़ा बड़ा शराबी है।

दिनभर की मजदूरी का आधा पैसा अपने चाचा यानी मंखलाल के पोते को दन के बाद जो दस आने बचे हुए थे, उन सारे पैसों की वह हंड़ियां पीकर झूमते हुए घर लौटा और शाम से ही जमीन पर बेहोश होकर पड़ा रहा।

फूलमनी झूमरी से बोली, 'जा, अब जाकर उसकी छाती से अपना सिर पटक आ। बदमाश, शराबी कहीं का।'

वह जैसा शराबी था, वैसा ही ताकतवर भी। दोनों ही बात सच थी। बुधन की मजदूरी पक्की हो गयी। किसी को काम मिले चाहे न मिले, उसे जरूर मिलता। लेकिन मुश्किल यह थी कि उसके पास कोई बोझिया नहीं था।

डगरू-सरदार ने उसे बुलाकर कहा, 'एक काम कर। 'गर्दी-जाइवे' कर। सुसराल में पांच साल मजदूरी करके बिता दे। बोझिया भी मिलेगी। अकेले खटने मे कोई मजा नहीं है।'

बुधन ने कहा, 'देखूं, क्या होता है।'

'तुझे तो कोई भी लड़की का बाप अपने यहां रख लेगा। बस शराब कम कर दे।'

'यही तो मुश्किल है। उसी में तो झगड़ा लगता है। खैर बरसात के बाद देखी जायेगी। अब बरसात का मौसम है। धान की रसोई का समय। इस वक्त तो अकेले का काम मिल जायेगा। इसके अलावा लड़की काटने, चीरने का काम तो है ही। वही करूगा।'

उधर संथाल कुंवारियों में उसे लेकर प्रतिद्वंद्विता शुरू हो गयी थी। बुधन को इसमें मजा आ रहा था। लड़कियां उसके करीब आना चाहती थीं, बात करना चाहती थी। उसे देखकर आपस में ही वे एक-दूसरे को धकियाने लगती थीं। बुधन मजा

लेता। मगर इन लड़कियों में फूलमनी नहीं होती थी।

बुधन काफी कसरत करता था। नाच के वक्त जब उनके टोले में जाकर मादल बजाता तब दूसरे टोले वालों को पता चल जाता कि बजाने वाला बुधन है। बुधन का मादल बजाना और नाचना सभी को अच्छा लगता था, लोग देखने जाते। बुधन के हाथ के थाप से मादल जितनी जोर से बजता था, उसी तरह उसकी छाती और हाथ की पेशियां नाचती थीं। वह तेजी से उछलकर चक्कर मारता था। वैसा करतब यहां कोई नहीं कर पाता था। लेकिन फूलमनी एक दिन देखने के बाद दुबारा नहीं गयी थी। बोली, 'धत्त, यह कोई देखने की चीज है। उसे बुला, वह मेरा नाच देखे।'

बुधन उसका नाच भी देख गया था। बुधन की एक दिन उसके टोले मे मादल बजाने की इच्छा थी। लेकिन फूलमनी ने कहा कि वह आयेगा तो वह नही नाचेगी।

बुधन बस्ती में लंगूरों को भगाने के लिए बड़ा शोर मचाता था, खूब उछलता-कूदता था, पेड़ पर चढ़कर उनका पीछा करता। संथालों को बड़ा मजा आता। लड़कियां तो झुंड में खड़ी होकर मजे लेकर हंसती रहती। फूलमनी उनमे नहीं शामिल होती थी। शोरगुल सुनकर वह एक बार बाहर निकलकर देखती, फिर अपने घर में घुसते हुए कहती, 'उसे उन लंगूरों के साथ पेड़ पर घर बसाने के लिए कहा।'

ऐसी फूलनी की भी आखिर एक दिन उससे निकटता हो गयी।

उस बार सन् 1956 को सितंबर महीने में बड़ी भयंकर बारिश हुई। लगातार छत्तीस घंटे तक बारिश ने रुकने का नाम नहीं लिया। छत्तीस घंटे में बाइस इंच पानी बरस गया।

मयूराक्षी, कोपाई, वक्रेश्वर बिल्कुल पानी से ऊम-चूम हो गया। कोपाई और वक्रेश्वर की सम्मिलित धारा कुए नदी के किनारे ही संथालों की बस्ती थी। लेकिन उनकी बस्ती एक मोदम के टीले पर थी, वह टीला नदी की तलहटी से लगभग साठ फुट ऊंचा था। पानी नदी की तलहटी से चालीस फुट से भी ऊपर चढ़ गया था। वे लोग टीले पर चिंतित खड़े थे कि कहीं पानी और बीस फुट ऊपर न चढ़ जाए। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। बाढ़ ने सारे क्षेत्र को बहाकर घर बार तोड़कर, खेत-खलिहान मे रेत भरकर ध्वंस लीला मचा दी। हर तरफ हाहाकार मच गया। लेकिन संथाल मर्द शिकार के लिए निकल पड़े। बाढ़ खत्म होने के बाद वे लोग शिकार पर निकल जाते थे। क्योंकि हर तरफ पानी भर जाने के कारण बिलों में रहने वाले जानवरो को

भी बेघर होना पड़ता था। उनमें से कुछ बाढ़ में मर जाते थे, कुछ ऊंची जमीन पर चले आते थे। कुछ जानवर वक्त रहते अपना बिल छोड़कर इधर-उधर आश्रय ले लेते थे। संथाल लोग ऐसे ही वक्त उन्हें खेदकर उनका शिकार करते थे।

एक दिन शिकार से संथालों का झुंड हुल्लड़ मचाते हुए वापस लौटा। दो लोग एक बांस अपने कंधों पर लाद कर ला रहे थे, उसमें एक छोटा चीता बधा था। दुम सहित वह तीन-साढ़े तीन हाथ लम्बा रहा होगा। ऊंचाई में करीब दो हाथ का।

उसे मारा था बुधन ने। बुधन ? हां बुधना भारलेक। उसने उससे युद्ध किया था। उसकी दुम पकड़कर उसे हवा में सौं-सौं करके घुमा दिया था।

इसके आगे उनसे कहते नहीं बना। इस दृश्य को याद करते ही सब खिलखिलाकर हंसने लगे।

'इसके बाद ? बाप रे ! चीता धम्म से गिरने के बाद अपने दांत निकालकर बड़ी जोर से गरजा। फिर बुधन ने उस ससुरे के आगे वाले दोनों पैर लपककर पकड लिये। दोनों हाथों से किसी योद्धा की तरह उसे जकड़ लिया।

बुधन का कंधा जख्मी हो गया था। ससुरे चीता ने दांत से पकड़ लिया था। वहा का थोड़ा-सा गोश्त भी निकाल लिया था। बाप रे ! बुधन लड़खड़ाते हुए आ रहा था। उसने खूब हंड़ियां पी रखी थी। चीते ने दांत से उसका कंधा जख्मी कर दिया था, इसकी उसे परवाह ही नहीं थी। इस टोले के सरदार, उस टोले के सरदार, नाम टोले के सरदार सभी ने कहा, हां वाकई वह मर्द है। बहादुर है !'

घटना वाकई चौकाने वाली थी। कोपाई के किनारे दुबसो में एक जंगल है, वहां पर नदी का एक मोड़ था। वहां पर बड़े-बड़े अर्जुन वृक्ष के जिनके नीचे अपेक्षाकृत छोटे अर्जुन वृक्षों का जंगल था। लोग वहां के पेड़ काटते नहीं थे। वहा पर इस क्षेत्र के लोगों के देवता का निवास था। चीते इस क्षेत्र में नहीं रहते। वे कोपाई के ऊपरी हिस्से में संथाल परगने की तरह हैं। वहां पर कोपाई के दोनों तरफ बडी-बड़ी चट्टानें और शाल के जंगल हैं। लगता है वह चीता बाढ़ में बहकर इधर चला आया होगा और उस मोड़ पर भटककर उस जंगल में घुस गया होगा। फिर वही रहने लगा होगा।

मांझी लोग शिकार के चक्कर में उधर ही निकल गये थे। उन्हें शिकार भी खूब मिले। कई खरगोश और ढेरों बनबिलाव मिले थे। वे सब बाढ़ के वक्त पेड़ पर चढ़कर बसेरा लिये हुए थे। वे सब उसी जंगल के थे। उनके बिलों में पानी घुसते ही वे पेड़ों पर चढ़ गये थे। वे बनबिलाव बस्तियों की बिल्लियों से बड़े होते थे—आकार में दुगुने और रंग उनका कुछ ललाई लिये हुए था। बदन पर लाल

धारियां थी।' नीचे की जमीन अभी तक सूखी नही थी, चारों तरफ कीचड़ था, इसीलिए वे सब पेड़ों पर ही रहते थे। वहीं पर चिड़ियों का शिकार करके मजे मे थे। संथालों ने बल्लम से कौच कर उन्हें मारा था। इसके अलावा कई गो-साप भी उन्होंने मारे थे। दुबसो के जंगल में चलते हुए उनकी नजर पेड़ों पर लगी हुई थी। अचानक बुधन की नजर एक झाड़ी पर पड़ी जिसके बाहर उसे एक दुम नजर आयी। कीचड़ से सने होने के बावजूद दुम के रंग को बुधन ने पहचान लिया। वह भी जर्दा के रंग वाली ही थी। वह दुम काफी मोटी ही थी। उस समय उसके दिमाग में बनविलाव ही नाच रहा था। उसे लगा कोई बड़ा बनविलाव होगा। पेड की शाख पर बैठे वनविलाव को मारना आसान होता है। लेकिन जमीन पर वे खनरनाक साबित होते हैं। ठीक बाघ की तरह ही वे गुर्राते हैं, फिर उसी तरह झपटते भी हैं। छलांग लगाकर अपने पैने नाखूनों से आदमी की देह को चीर डालते है। बुधन ने फुसफुसाकर सभी को सतर्क करते हुए कहा था, मैं जाकर उस साले की दुम पकड़कर खींचता हूं। तब वह अपने आगे के पंजों के नाखूनों से किसी चीज को जकड़कर अपने को बचाने की कोशिश करेगा। ऐसी सूरत में साला बलि की काठी में फंसे बकरे की तरह वह लम्बा हो जायेगा। तब तुम लोग डंडे से पीट-पीटकर उसे मार डालना।

इसके बाद उसने दबे पांव जाकर उस कीचड़ सनी दुम को झट से पकड़कर एक झटका मारा। बुधन की योजना में कोई चूक नहीं थी। वह चीता बाढ़ का पानी पीकर थोड़ा ढीला पड़ गया था, फिर भी आखिरकार था तो चीता ही। उसने झाडी के तने को पकड़कर दहाड़ मारी। उस दहाड़ से सभी चौंक गये। 'अरे बाप रे ! यह कैसा बनविलाव है।'

बुधन संथाल परगने का रहने वाला था। यहां के लोगों की तुलना में बाघ-चीतों के बारे में बेहतर जानकारी थी। उसने चीता देखा भी था। वह मामला समझ गया। उसके मुंह से निकला, 'यह चीता है। टांगी मार। इसके बाद उसने पूरी ताकत से उसे खींचा। दूसरे मांझी टांगी मारने लगे। लेकिन झाड़ी के अंदर रहने के कारण चीते का कुछ खास नहीं बिगड़ा। उधर बुधन के खींचने के कारण चीते ने जिस डाल को पकड़ा था वह टूट गया जिससे चीता बाहर आ गया। कई संथाल तो वहां से भागकर दूर खड़े हो गये। बुधन को कोई उपाय नजर नहीं आया। चीते ने जमीन पर पैर टिकाकर खड़े होने की। कोशिश की वह चीता अभी छोटा ही था। फिर भी कम बलशाली नहीं था। अपनी जान बचाने के लिए बुधन पूरी ताकत से चीते की दुम दोनों हाथों से पकड़कर उसे हवा में घुमाने की कोशिश करने लगा। उसने एक जोरदार झटके से उस चीते को हवा में कई बार घुमाकर सभाल न कर

पाने के कारण छोड़ दिया। वह चीता थोड़ी दूर पर छिटककर धप्प से गिरकर कुछ क्षणों तक बेजान पड़ा रहा।

संथालों ने इस बार उसे दो-चार बार अपने बल्लमों से कोंचा। दो बल्लम बिंधे भी। बुधन ने जो काम किया वैसा कोई सोच भी नहीं सकता था। वह तेजी से दौड़कर आया और उस अस्त चीते पर कूदकर सवार होने की कोशिश करने गया पर ऐसा कर नहीं पाया। वह जैसे ही सामने पहुंचा चीते ने पिछले दोनों पैरो पर खड़े होकर पंजा मारने की कोशिश की। लेकिन बुधन ने दोनों हाथों से उसके दोनों पैर कपड़कर किसी पहलवान की तरह ही अपने पैरों को सख्त करके खडा हो गया। चीते ने मुंह फाड़कर उसके कंधे पर दांत गड़ा दिये। इस बार बुधन ने चिल्लाकर कहा, 'साले को कटार से मारो। उसके सिर पर—सिर पर। चीते के सिर पर वार करना आसान काम नहीं था। क्योंकि चीते ने बुधन के कंधा पकड़ रखा था। कटार का वार बुधन के सिर पर भी हो सकता था। लोगों ने चीते की गर्दन और पीठ पर वार किये। चीते ने दर्द से बुधन का कंधा छोड़कर पीछे मुड़ने की कोशिश की। मौका देखकर बुधन ने उसे खींचकर गिरा दिया। साला चित होकर गिर पड़ा। बुधन ने बड़ी फुर्ती से किसी की कटार छीनकर चीते की नाक और ऊपर के जंबड़े पर जोरदार वार किया। वह लगातार वार करता गया। कुल मिलाकर घटना यह थी।

इसके बाद बुधन से भी खड़े रहते नहीं बना। वह वहीं बैठकर बोला, 'अरे बाप रे! फिर वहीं लेट गया। डगरू उसके पास आकर उसे संभालते हुए बोला, 'ले हंडिया पी।'

'दे!'

सेर भर हंड़िया पीकर थोड़ी देर बाद वह उठकर उस चीते को देखकर बोला, 'साला!' उसके बाद उसने फिर कहा, 'थोड़ी हंड़िया मुझे और दे!'

हंड़िया पीकर वह बोला, 'अब चल!'

उसी के बाद सब शोर मचाते हुए आ रहे थे। गांव के पार उसका शोर कुछ और बढ़ गया। सबसे जयादा शोर तो खुद बुधन ही मचा रहा था। संथाल टोले की कुंवारी लड़कियां चकित होकर उसे देख रही थीं। वह हा-हा करके हंस रहा था। वह अपना पौरुष बखानते हुए कह रहा था—साले के दोनों पैरों को मैंने अपने पजों से पकड़ लिया। साले ने मेरा कंधा काट लिया। ले साला काट। मैं भी बुधन हू। हां! साले के सामने के दोनों पैर मरोड़कर तोड़ देता। साला भला मुझसे जीत पाता। हूं।'

उसकी नजर फूलमनी पर पड़ी। वह सबके सामने ही खडी थी। आज

उससे आये बिना रहा नहीं गया उसने पूछा 'क्या फूलमनी यह चीता कैसा है क्या देख रही हो ? चीते के नाखून ? उसे मैं नहीं दूगा। अपनी औरत को दूगा।

फूलमनी बोली, 'उसे ही देना। मैं गीदड़ नहीं हूं। मैं गले में तावीज नही पहनती। तेरे कंधे से तो खून बह रहा है। दवाई लगा। नहीं तो पक जायेगा। तब भोगेगा। पानी से उसे धो डाल।'

'तू धो देगी ?'

'हां दूंगी। आज तूने चीता मारा है। इसीलिए तेरा काम कर दूंगी।'

बस यहीं से सिलसिला शुरू हुआ। तभी से बुधन का पलड़ा भारी होता गया। फूलमनी की हार हो गयी। ठीक हार नहीं, बुधन उससे प्यार करने लगा था। उस टोले के सभी लोग यह बात समझ गये कि बुधन फूलमनी से शादी करेगा, लेकिन बुधन की शराब की आदत को फूलमनी नापसंद करती थी। इसके अलावा टोले की अन्य लड़कियों से उसके संबंधों को लेकर उनमें झगड़ा भी होता था।

यहां जिस घटना की चर्चा कर रहा हूं वह सन् छप्पन के नवंबर के शुरुआत की है। चीता मारने के क़रीब डेढ़ महीने बाद की। अपने छोटे भाई से मुझे इस घटना की विस्तृत जानकारी मिली। वह कांग्रेसी नेता है। इसके अलावा भी कई तरह की व्यस्तता है। उस पूरे क्षेत्र में मेरे छोटे भाई की समाज सेवा बेहद आंतरिक ओर सर्वजनस्वीकृत हे। और भी एक गुण है उसमें, वह यह कि यूनियन बोर्ड से लेकर एम. एल. ए., एम. एल. सी. या ढेरों सभा-समितियों के किसी भी पद के लिए वह कभी प्रार्थी नहीं हुआ या आग्रह करने पर भी ग्रहण नहीं किया। अपना घर था, मगर घर का काम कभी नहीं किया। लोगों की देनदारियां तक तकादा न करने के कारण वसूल नहीं हो पाती थीं। दिन-रात कैसा भी वक्त हो, जरूरत महसूस होते ही वह वहां पहुंच जाता। चाहे वह बाढ़, आंधी तूफान, आगजनी, दंगा यहां तक कि साम्प्रदायिक दंगा ही क्यों न हो। उसके लड़के नौकरी करते थे, मामूली नौकरी, मगर गुजारा चल जाता था। घर-गृहस्थी की जिम्मेदारी उसकी पत्नी पर थी। संथाल लोग उसे बहुत मानते थे। चीते की खबर पाते ही वह दूसरे दिन संथाल बस्ती में पहुंचा। उसे चीते को तथा बुधन को देखने के बाद उस चीते को थाने में जमा करके सदर मे भिजवाने की उसने सलाह दी थी। बुधन को इनाम मिलेगा। बुधन के इलाज के लिए वह हेल्थ सेंटर में ले आया था। साथ में और लोग भी थे उनमें फूलमनी भी थी। अस्पताल में बुधन को सुई लगाने तक घाव की मरहम-पट्टी के बाद भर्ती कर लिया गया था। लेकिन बुधन ने वहां भर्ती होने से इनकार कर दिया। उसने कहा, 'वह वहां रहेगा तो मर जायेगा।

फूलमनी बोली, 'बाबू उसे छोड़ दो। उसे गांव ले जाऊं। जो दवा देना हो दे

दो। जो करना हो बता दो। मैं सब संभाल लूंगी।'

फूलमनी ने ऐसा ही किया। उसे रोज सुबह अस्पताल में ले आती थी। मरहम-पट्टी करते वक्त जरूरत पड़ने पर वह उसे पकड़कर बैठी रहती थी। घर में खाना अर्थात् शुरू के दो दिन सागू बनाकर खिलाया भी था।

यह बात सभी जानते थे। इसलिए कुमू बोली थी, 'बाघ मारने वाले मांझी के साथ तू जो कुछ कर रही है, क्या मुझे मालूम नहीं ?'

फूलमनी बोली, 'मालूम हो तो ठीक है, मेरी बला से !'

नहाने-धोने के पहले ही मैंने, ये सारी बातें सुनीं। हम सभी ने सारी बातें सुनी थीं। मैं, शकुंतला, ए. एस. एस. सभी ने। सुनने के बाद हंसते हुए कहा, 'ब्रदर, वीर शुक्ला यह कन्या, थियेटरी वीर को यह कभी नहीं करती वरण ! तुम हार गये !'

शकुंतला बोली, 'थियेटरी-मूंछ और गलपट्टे से कुछ होने वाला नहीं है भैया। तुम मूंछें बढ़ाओ। अन्यथा—नो होप !'

ए. एस. एस. ने कहा, 'नाना, तुम अपना बंदूक मुझे दो। महू तू थोड़ी चाय और टिफिन कैरीयर में बढ़िया नाश्ता बनाकर भर दे। मैं अभी रवाना हो रहा हूं।'

'कहां ?'

'सुंदरवन, हजारी बाग ! सुना है कि साइबेरिया में भी धारीदार बाघ हैं। जहां से भी हो बाघ मारकर उसे लाने के बाद ही जल ग्रहण करूंगा।'

'तू तो खाना बनाने के लिए कह रहा है।'

'इस खाना तो पानी नहीं है। चाय भी पानी नहीं है। चाय है। यही सब मैं खाऊंगा। लौटने के बाद पानी पिऊंगा।'

'इससे तो अच्छा है कि कलकत्ता से एक मरे हुए शेर की खाल, जो लोग भुस भरकर बेचते हैं, खरीदकर ले आ। यहां लाकर कहना, इसे तूने मारा है।'

'धोखाधड़ी ? नहीं, यह काम मुझसे नहीं होगा।'

नहाने के लिए भीतर से तकादा आ गया। सभा भंग हो गयी।

भोजन के बाद मैं सो गया था। उठकर देखा, मांझिनों का काम खत्म हो गया था। वे दोनों शकुंतला और ए. एस. एस. के साथ घनिष्ठ होकर बैठी थीं। गाने की आवाज आ रही थी। वह गाना टेपरेकार्डर में बज रहा था—संथाली गाना। दोनों लड़कियां चकित होकर सुन रही थीं। साथ ही कहती जा रही थीं—अरे बाप रे ! अरे बाप रे. बीच में वे हंसने भी लगती। शकुंतला बोली, ए. एस. एस. हैज वन दादू। टेप रेकार्डर में उनका गाना टेप करके टाइगर किलर से भी ज्यादा अनोखा आदमी बन गया है

दूसरे दिन भी वे दोनों काम करने आयी थीं। काम क्या हुआ—खाक ! दिन भर वे तीन युवतियां और दो युवक बैठकर हो-हुल्लड़ करते रहे।

दोनों युवकों में एक ए. एस. एस. और दूसरा बुधन था। उन दोनों ने बुधन से बाबुओं के लड़के की चर्चा की थी। बुधन भी उनके साथ चला आया। वह यहां पर काम करने नहीं, यूं ही मिलने आया था। ए. एस. एस. ने उससे दोस्ती गांठ ली। उसको तीर धनुष से उसने काफी व्यर्थ निशान लगाये। पंजा लड़ा कर हारा भी उसने उसे अपना टेपरेकार्डर दिखाया। मेरी बंदूक से उड़ती चिड़िया मार गिरायी। दोनों ने खूब बातें कीं। उसे उसने अपना धूप का चश्मा भेंट किया। बदले में उससे बुधन ने चीते का एक नाखून दिया।

इसके बाद मैं चला आया।

मैं अगले महीने गया। उस बार अकेले ही गया था। मगर उस बार फूलमनी से भेंट नहीं हुई। झूमरी आयी थी। वह मुस्कराकर बोली—वह अब— । कहकर हंसने लगी।

'क्या, अब क्या ?'

'अब उसी बुधन के अलावा कुछ सूझता नहीं।'

मैं समझ गया। पूछा, 'शादी कब होगी ?'

'इसी चैत-बैसाख में।'

मैं फिर अगले महीने गया। उस बार फूलमनी मिलने आयी। अकेली। साथ में झूमरी नहीं थी। मैंने पूछा, 'शादी कब है ?'

वह बोली, 'पता नहीं।' इसके बाद उसने पूछा, 'वे लोग कहां हैं ?'

'कौन लोग ?'

'वही मेरी मितनी और मितवा बाबू ! तुम्हारे नाती और नातिन।'

'उनकी पढ़ाई चल रही है। कैसे आते ?'

फूलमनी खामोश हो गयी। इसके बाद बोली, 'कुछ काम है ?'

'करो।'

वह काम करने लगी। मगर वह बार-बार मेरे पास ही चली आती थी। मैंने पूछा, 'क्या बात है ?'

बोली, 'कुछ नहीं। आज तबीयत अच्छी नहीं है। इसीलिए मैं थोड़ी कमर सीधी कर रही हूं।'

'तब मजदूरी करने की क्या जरूरत थी ?'

'न करूं तो खाऊंगी क्या ?'

'तू, पैसे लेकर घर चली जा आज काम करने की जरूरत नहीं है

'नहीं, ऐसे कैसे ले लूं ? कुछ काम कर दूं। थोड़ा कम काम करूंगी। किसी दिन ज्यादा काम कर दूंगी।'

'ठीक है।'

थोड़ी देर बाद बोली, 'बाबू, तुम तो मितिन के, मीत के मां के बाप हो न।'

'हां, नाना हूं।'

'मेरे भी हो ?'

'तुम्हारा भी हूं।'

'तुम मुझे एक—नहीं दो अच्छी साड़ी खरीदे दोगे ?' और ब्लाउज भी ?'

मैं समझ गया कि उसके मन में जवानी के सपने लहराने लगे थे। मैंने कहा, 'दूगा। जरूरत दूंगा।' गांव के दुकान से मैं खुद जाकर साड़ियां पसंद करके ले आया। कहा, 'इस बार आऊंगा तो कलकत्ता से और बढ़िया खरीद लाऊंगा।'

'देना, जिससे मैं खूब सुंदर लगूं।'

अगले महीने मैं जा नहीं पाया था। उसके एक महीने बाद मैं गया। खून बढिया साड़ी-ब्लाउज और नये फैशन की कांच की चूड़ियां, स्नो वगैरह उसके लिए ले गया। नाती और नातिन से टोकरी सजा दी। मैं शाम के वक्त गांव में पहुंचा। वहा पहुंचकर भाई से कहा, 'फूलमनी को जरा बुलवाओ तो !'

'फूलमनी ? वह तो जेल में है।'

'मतलब ?'

'यह कहानी काफी लम्बी है।'

फूलमनी ने आत्महत्या करने की कोशिश की थी। अपने गले की एक नस भी काट ली थी। इसीलिए पुलिस ने उसे गिरफ्तार करके अदालत में पेश किया था।

मैंने चकित होकर पूछा, ऐसा क्यों ? आत्महतया करने की क्या जरूरत आ पडी।' मेरा दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। अचानक मेरी आंखों के सामने दो पढे-लिखे कौतुक प्रिय युवक-युवतियों की तस्वीर कौंध गयी।

छोटे भाई ने कहा, 'सब उसी बुधन के लिए हुआ। वह बड़ा शैतान, महाबदमाश, शराबी और— ।'

शराबी बुधन न जाने कितनी कुमारियों की कामनाओं का उपभोग करने वाला बुधन ! उसने कुछ दिनों के लिए फूलमनी के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था। उसे वश में करके फूलमनी के गर्व की सीमा नहीं थी। चैत-वैसाख में उनकी शादी भी तय हो गयी थी। यह भी तय हो गया कि फूलमनी के यहां ही बुधन रहेगा। बुधन और फूलमनी अपने भविष्य के सपने बुनने लगे। फूलमनी कहती खेती करनी पडेगी बैल खरीदकर खुद अपने हल की खेती खेत तो लोग अपनी

गज से दे ही देगे बुधन माझी जेसा हलवाहा उन्हे कहा मिलेगा ? इसके अलावा फूलमनी को गांव के सभी लोग प्यार करते थे। वह जाकर अच्छी जमीन उनसे बटाई पर ले लेगी।

दोनों एक साथ मजदूरी करने जाते थे। शादी हुए बिना बोझिया होने की प्रथा नहीं थी। इसीलिए झुमरी के साथ फूलमनी जहां काम करती, उनके नजदीक ही बधन भी काम करता था।

बुधन जहां कहीं भी लकड़ी काटने के लिए अकेले जाता, उसके खाने के वक्त फूलमनी वहां पहुंच जाती।

चांदनी रात में दोनों खुले मैदान में बैठे रहते। बुधन ने भी शराब कम कर दी थी। अचानक दो महीने पहले फूलमनी का जो बड़ा भाई आमोद्पुर के कारखाने मे काम करता था, वह अपनी औरत और उसकी बहन के साथ वहां आया। वह छोकरी भी कम नहीं थी। फूलमनी जैसी भले ही सुंदरी न रही हो मगर रंगीन-मिजाज थी। कारखाने में काम करती थी, रंगीन साड़ी-ब्लाउज पहनती, मांग निकालकर बाल काढती, हाथों में रंगीन चूड़ियों पहनती। परम विलासनी थी। वे सब फूलमनी के भाई के बच्चे के अन्नप्राशन का न्योता देने आये थे। फूलमनी के भाई के पास अब काफी पैसे हो गये थे। बाबुओं की तरह धूमधाम से अन्नप्राशन करने की उसकी इच्छा थी, जो संथालों के बूते की बात नहीं थी। वे लोग दो दिन रहे। बधुन ने उस वक्त खूब हुल्लड़ मचाया। उसने खूब शराब पी थी। उस लड़की के साथ खूब चुहलबाजी की थी। फूलमनी को यह सब अच्छा नहीं लगा। उनके जाने के बाद उसने बुधन को बुरा-भला कहा। बुधन निर्लज्ज की तरह दांत निपोरकर हंसता रहा। इसके बाद फूलमनी और उसकी मां आमोद्पुर गयी थी। बुधन साथ नहीं गया था, फूलमनी ने ही उसे जाने नहीं दिया। उसने कहा, 'तू क्यों जायेगा ? वे तुम्हारे कौन होते है ? पहले हमारी शादी हो जाए, तब वहां जाना। फिर वहां जाने की जरूरत ही क्या है। शराब पीने ? और उस लड़की को देखते-देखते ऐसा करेगा तो मैं तुझे मरवा डालूगी। जब तू शराब-पीकर बेहोश पड़ा रहेगा, तब। हां !'

मगर बुधन ने परवाह नहीं की। वह उसके साथ जरूर नहीं गया लेकिन दूसरे दिन ही वहां जाकर हाजिर हो गया। फूलमनी गुस्सा हुई थी। मगर बुधन बेहया की तरह ही हंसता रहा। ठीक उसी वक्त वह लड़की उसका नाम था हासी मांझिन—उसका वह नाम कारखाने के बाबुओं ने रखा था, वही हासी मांझिन वहां आकर बोली, 'अरे कुटुम्ब आया है। आओ—आओ बैठो।'

बुधन ने पूछा, 'यह तो बताओ कहां बैठूं ?'

हासी मांझिन बोली, 'अपना आंचल बिछा दूं क्या ? मगर यह कहने के बाद

बोली, 'उहूं, यह काम तो फूल करेगी।'

फूलमनी बोली, 'नहीं, मैं नहीं करूंगी।'

उसने कहा, 'तब मैं अपना अंगोछा बिछा देती हूं।' उसने वाकई अंगोछा बिछा दिया।

इसके बाद शराब पीकर मतवाला होकर बुधन ने ऐसी चुहलबाजी शुरू की जो फूलमनी और उसकी मां को पसंद नहीं आयी। फूलमनी दूसरे दिन मारे गुस्से के वहां से चली आयी। उसकी मां को कहां रहना पड़ा था। बुधन शराब पीकर वहां पड़ा रहा। मां के चले आने के भी दो दिन बाद वह वहां से लौटा।

बस यहीं से बात बिगड़ने लगी।

छोटे भाई ने कहा, 'फूलमनी ने तुमसे साड़ी-ब्लाउज मांगा था, याद है न ?'

'हां, इस बार भी उसके लिए महंगी साड़ी खरीद लाया हूं। शकुंतला ने खुद अपनी पसंद से खरीदी है।'

छोटा भाई मुस्कराया। बोला, 'उसने शकुंतला की तरह सजने-संवरने की बात सोची थी। बुधन उस लड़की के संवरने के कारण आकर्षित हुआ था, उसने भी संवरने की ठान ली। उस समय बुधन सांप की तरह केंचुल छोड़ रहा था। उसका आमोदपुर आना-जाना बढ़ गया। वहां जाता तो दो दिन तक लौटता ही नहीं। बाद में लौटता। कुछ दिन यहां रहने के बाद फिर वहां चला जाता। ऐसा ही चल रहा था। फूलमनी सज-संवरकर भी उसका मन फेर नहीं पायी। इसके बाद उसने भी उस लड़की की तरह शराब पीना शुरू कर दिया। लेकिन उससे भी कोई फायदा नहीं हुआ। बुधन उस वक्त उस लड़की के साथ हद से आगे गुजर चुका था।

फूल बहुत रोयी, उसे काफी मनाया। पंचायत बुलायी। लेकिन बुधन ने कोई बात नहीं मानी। वह यहां से भाग गया। दो दिन, चार दिन, सात दिन बीते—एक दिन खबर मिली कि बुधन ने उस लड़की से शादी कर ली है। शादी नहीं सगाई। उस लड़की की भी एक शादी हो चुकी थी, अब अलगाव हो गया था। कारखाने के मिस्त्रियों के साथ उसकी बदनामी फैली थी। ऐसे ही ढेरों किस्से थे। ऐसी ही लड़की से बुधन ने सगाई कर ली।

फूलमनी को बहुत धक्का लगा। टोले की लड़कियां उस पर हंसने लगीं। बुधन को लेकर ये सब उससे जलने लगी थीं। ऐसा ही प्रतिक्रिया टोले के लड़कों में भी हुई। वे भी हंसने लगे। तब एक दिन फूलमनी एक दिन एक तेज धार वाली कटारी गमछे में बांधकर आमोदपुर रवाना हो गयी। वह अपने भाई के यहां पहुंची। बुधन वहीं रहता था। उसी के क्वार्टर में। वह क्वार्टर हासी मांझिन को मिला था। दोनों अगल-बगल थे। दोनों क्वार्टरों के आंगन के बीच एक दीवार थी। फूलमनी के आने

की खबर पाकर बुधन और हासी ने अपने घर का दरवाजा बद कर लिया। मगर फूलमनी ने उनका दरवाजा खटखटाया भी नहीं। वह शाम को हंड़िया पी आयी। बिल्कुल मतवाली होकर लौटी। चलते हुए पैर लड़खड़ा रहे थे। लौटने के बाद अपने भाई और भावज से उसने खूब हंस-हंसकर बात की। गर्मी के दिन थे। सभी बाहर सोते थे। वे लोग भी सोये थे। रात में फूल उठकर कमर में पल्लू लपेटकर कटारी को खोजने के बाद खटिया खींचते हुए दीवार के पास लाकर उस पर चढ़कर उस दीवार को फांदकर उनके आंगन में कूद गयी। वहां हासी और बुधन एक-दूसरे के आलिंगन में सोये हुए थे। दोनों ही गहरी नींद में थे। दोनों ने भी खूब शराब पी रखी थी। फूलमनी के कूदने की आवाज से भी उनकी नींद नहीं टूटी। फूल उस कटारी को लेकर उनके पास खड़ी हो गयी। उसका इरादा एक ही वार में दोनों को खत्म करने का था।

छोटा भाई कहते-कहते रुक गया। उसके बाद फिर बोला, 'इसके बाद क्या हुआ यह अंदाज की बात है। मतलब फूलमती ने क्या किया, किसी को पता नही। फूलमनी का कहना था, वह खुद भी नहीं जानती। दोनों को मारने की इच्छा नही हुई। वह कटारी तुमने खुद अपनी गर्दन पर मार ली। कटारी की धार खूब तेज करके ले गयी थी। कटारी से गले की नस काट दी।'

मुद्दा बात यह कि गले पर कटारी चलाने के बाद फूलमती जब गिर पड़ी ओर उसके गले में फव्वारे की तरह निकलता हुआ खून उनके बदन पर गिरा तब उनकी नींद टूटी। कम से कम उनका यही कहना था।

लोग, मतलब आस-पास के क्वार्टर वालों ने देखा कि बुधन और हासी उसकी लाश बाहर फेंकने ले जा रहे थे। वे शोर मचाने लगे। लोगों को खबर मिलते ही पुलिस भी आ गयी। वह बुधन और हासी दोनों को फूल के कत्ल के इल्जाम में पकड़कर ले गयी। फूल को अस्पताल भेजा गया। जख्म गहरा था। सामने की नस आधी कट गयी थी। उसमें टांके वगैरह लगाकर, खून चढ़ाकर किसी तरह उसे बचाया गया। फिर अदालत में मुकदमा शुरू हुआ। फूल मरने से बच गयी थी। बुधन और हासी ने उसे मारने की कोशिश की थी। उनके खिलाफ सबूत भी ढेर सारे थे। ऐसे समय फूलमती स्वस्थ हुई। उसने कहा, 'यह बात गलत है। मैं ही उन दोनों को जान से मारने के इरादे से आयी थी। यह कटारी मेरी है। उन्हें मारने गयी, ये दोनों एक दूसरे की बाहों में लेकर सो रहे थे। मैने काफी पी रखी थी। उन्हें मारते वक्त मैं रोने लगी। रोते-रोते मुझे लगा, ये दोनो ही सुख से रहें। तुम्हीं लोग मजे से रहो। मैं ही जान दे दूं। यह सोचकर मैंने अपने गले पर कटारी मार ली।'

सरकारी वकील ने जिरह करते हुए कहा, 'तू बुधन को बचाने के लिए ऐसा कह रही है।'

'नहीं बुधन को तो मैं मार सकती थी। लेकिन मैंने नहीं मारा। मरंग रोंगा साक्षी है। वही जानते हैं।'

इसके बाद फूलमती पर मुकदमा चला। आत्म-हत्या करने की कोशिश का। छह साल की जेल की सजा तो हो ही जाती। लेकिन कम उम्र के कारण वह बच गयी। डॉक्टर ने कहा, अभी वह उठारह साल की नहीं हुई है।

जज ने सारी बातें सुनकर फैसला लिखा, 'यह मामला न्यायाधीश के लिए बेहद पेचीदा है। किसी की हत्या करना जघन्य अपराध है। ऐसा अपराध करने के लिए आकर मौका पाने के बावजूद अपढ़ आदिवासी लड़की ने अपने को संयत करके आत्म-हत्या करने की कोशिश की। यह हैरत की बात है। किसी की हत्या न करने के कारण उसकी तारीफ की जानी चाहिए। आत्म-हत्या की कोशिश बेहद अफसोस की बात है। उस पर वह अभी उठारह साल की भी नहीं हुई है। मैं इसलिए उसे दो साल के लिए सुधार गृह में भेज रहा हूं। ऐसी अच्छे दिल की लडकी को वहां पर दो साल तक कोई अच्छी सम्मानजनक शिक्षा मिले, मैं इसकी सिफारिश करता हूं।

इस वक्त वह सुधार गृह में है। मै यह सब सुनकर बेहद हैरान हुआ।

हैरानी का यहीं अंत हो जाता तो फिर मैं यह कहानी न लिखता। मेरे लिए और भी आश्चर्यजनक घटनाएं इंतजार कर रही थीं।

सन् 1964 के अनुसार शुरुआत की बात है। उस घटना के आठ साल बाद की। मैं देवघर गया था। वहां मेरी एक रिश्तेदार महिला डॉक्टर थीं। उनसे मिलने गया। अस्पताल के कम्पाउण्ड में उनका क्वार्टर था। मैं उनसे बातें कर रहा था कि तभी नौकर उन्हें बुलाने आया। कुछ देर बाद ही वे एक नर्स को साथ लेकर आयीं। उसे देखते ही मैं समझ गया वह कोई आदिवासिनी थी। वह नर्स मेरी ओर देखकर हसने लगी। दूसरे ही क्षण मैं उसे पहचान गया। उसकी आंखों को देखकर ही पहचाना। फूलमनी ! मैं चकित हो गया। मगर वह पहले वाली फूलमनी नहीं थी। ज्ञानवृक्ष के फल की पुष्टि और लावण्य उसके पूरे व्यक्तित्व में था। उसका स्वास्थ्य अब उन दिनों जैसा नहीं रह गया था। एक दीये पर जैसे कांच का फानूस रख दिया गया था। नहीं। यह मेरी पुरानी दृष्टि थी—मेरी नजरों का धोखा था। बूढ़ा होने पर आखों पर जाले पड़ते हैं, आदमी को साफ नजर नहीं आता। यहां भी वैसा ही हुआ। अपने चश्मे का शीशा पोंछकर मैंने ठीक से देखा। अब वह अच्छी लग रही थी। फूलमनी और भी सुन्दर हो गयी थी।

उसने मुझे प्रणाम किया। अब वह मजदूरी करने वाली संथाल लड़की नहीं थी। वह एक पढ़ी-लिखी नर्सिंग ट्रेंड नर्स थी।

फूलमनी अब बांग्ला भी पहले की तुलना में साफ बोलने लगी थी। उसने खांटी बांग्ला में मुझसे पूछा, 'आप ठीक हैं ? स्वस्थ हैं ?'

'हां ! तुम कैसी हो ?'

'ठीक ही हूं।' उसकी मुस्कराहट बड़ी करुण थी।

'सुधार गृह में नर्सिंग की ट्रेनिंग भी ली है ?'

'वहां पर अस्पताल का काम सीखा था। वहां से निकलकर फिर पढ़ाई की थी। एक साल हुए हैं।'

'तुमने शादी की ?'

उसने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

मैंने अपनी रिश्तेदार से थोड़ा एकांत के लिए कहा। वे चली गयीं। मैंने कहा, 'मुझे सारी बातें पता है फूल ! तुमने जो किया है वह सबके बूते का नहीं है। मगर अब तुम शादी कर डालो।'

वह मौन रही।

'शादी नहीं करोगी ?'

'नहीं।'

मैंने फिर यह सवाल नहीं किया। दूसरी बातें करने लगा। 'अपने गांव गयी थी ?'

'नहीं। मैंने वहां की खबर ली थी। मां मर चुकी है। हासी भी मर गयी है। बुधन के पांच बच्चे हैं। शराब पीते-पीते उसे हंफनी हो गयी है।' वह थोड़ा मुस्करायी। फिर बोली, 'सोचा था, यहां लाकर उसका इलाज करवाऊंगी। मगर नहीं—ऐसा आदमी बिल्कुल नहीं बदलता। मैं भी अब बर्दाश्त नहीं कर पाऊंगी। उसे रुपये भेज देती हूं।'

'रुपये भेजती हो ?'

'हां।'

मैं कुछ सोचने लगा। उसने पूछा, 'मेरी मितनी कैसी है ?'

'ठीक है। प्रोफेसरी कर रही है।'

'शादी की है ?'

'अभी नहीं। उसे दुल्हा पसंद नहीं आ रहा है।'

फूल खिलखिलाकर हंस पड़ी। हां अब वह पहले वाली फूल लगी। उसने गर्दन झुकाकर पूछा और मितवा ?

'उसकी भी बात तुम्हें याद है ?' फूल मुस्करायी। विलायत से लौटकर उसने एक नर्सिंग होम खोल लिया है।'

उसने गर्दन झुकाये ही पूछा, 'शादी की है ?'

'हां, शादी हो गयी है ?'

'मेरी तरह काली है या सुंदर है ?'

मेरा दिल धड़क उठा। मैंने कहा, 'ठीक ही है।'

फूल हंसने लगी। बोली, 'आप झूठ कह रहे हैं। मुझे पता है, वह बहुत सुंदर है। खूब गोरी है।'

उसकी बात ठीक ही थी। इसके बाद हम दोनों ही खामोश हो गये। अचानक मैंने पूछा, 'तुम उसके नर्सिंग होम में काम करोगी ?' मैं उससे कहूं ?'

वह अपना सिर हिलाने लगी—नहीं, नहीं, नहीं।

